

75
4-62

D:\Treasures28
\vicky\other
books\anon4
\Dhai Hazar
Anmol Bol -
Hanuman Prasad
Poddar.pdf

D:\Treasures28
\vicky\other
books\anon4
\Dhai Hazar
Anmol Bol -
Hanuman Prasad
Poddar.pdf

मो
ल
बोल

संपादक:- हनुमान प्रसाद पौडार

भुवना

मुद्रक तथा प्रकाशक

मोतीलाल जालान

गीताप्रेस, गोरखपुर

संवत्	१९९६	से	२०१६	तक	१,५२,२५०
संवत्	२०१९	चौदहवाँ	संस्करण		२५,०००
संवत्	२०२२	पंद्रहवाँ	संस्करण		२५,०००
					<hr/>
					कुल २,०२,२५०

मूल्य पचहत्तर पैसे

सजिल्द रु० १.२० (एक रुपया बीस पैसे)

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

निवेदन

संत विश्वकल्याणके परम आधार हैं, उनकी प्रत्येक चेष्टा स्वाभाविक ही विश्वके कल्याणके लिये होती है। उनकी वाणीसे अमर ज्ञानामृत झरता है, उनके नेत्रोंसे प्रेमकी शीतल सुखद ज्योतिधारा बहती रहती है, उनके मस्तिष्कसे अखिल जगत्का कल्याण प्रसूत होता है, उनके हृदयसे आनन्दका प्रवाह बहना है। जो कोई भी उनके सम्पर्कमें आ जाता है, वही पाप-तापसे मुक्त होकर महात्मा बन जाता है। वे जिस स्थानमें रहते हैं वही स्थान पुण्यतीर्थ बन जाता है। वे जो उपदेश करते हैं वही पावन सत्कर्म-शास्त्र बन जाता है; वे जिन कर्मोंको करते हैं, वे ही कर्म आदर्श समझे जाते हैं। संत सभी देशों, सभी धर्मों और सम्प्रदायोंमें होते हैं। हिंदू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी आदि सभी मतोंमें सच्चे संत हुए हैं। किसी देश या कालविशेषसे संतोंका संकोच नहीं किया जा सकता। सभी देशोंमें सभी समय कोई-न-कोई संत रहते हैं और वे छिपे या जाहिरा तौर-पर जगत्का कल्याण करते रहते हैं। ऐसे ही संतोंके ढाई हजार 'अनमोल बोल' इसमें संगृहीत हैं। ये बोल ऐसे हैं जो दुःख-सागरमें डूबे हुए पापी-से-पापी प्राणीको भी तारनेमें समर्थ हैं।

इसमें प्रायः सभी देशों और जातियोंके संतोंकी वाणीका संग्रह है। अधिकांश संग्रह हमारे सम्मान्य भाई श्री 'माधवजी' का किया हुआ है; कुछ वचन दुबारा आ गये थे। अष्टम संस्करणमें उनके स्थानपर दूसरे वचन बैठा दिये गये हैं। आशा है पाठक-पाठिकागण इससे विशेष लाभ उठावेंगे।

गीताप्रेस, गोरखपुर
श्रीजन्माष्टमी, २००९

हनुमानप्रसाद पोद्दार



संत-वन्दना

हे पवित्रकीर्ति संतगण ! आकाशमणि सूर्य पृथ्वीको ऊपरसे आलोक प्रदान करता है, किन्तु आपलोग पृथ्वीपर रहकर उसपर ईश्वरीय प्रकाशको प्रसारित करते हैं; अतः हम आपकी वन्दना करते हैं ।

भगवान् सविता पृथ्वीको ताप प्रदान करते हैं और आपलोग अपने भीतरी खजानोंमेंसे ज्ञानरूपी अमृत देकर जीवात्माको सुखरूप उष्णता प्रदान करते हैं । हम जिधर आँख उठाकर देखते हैं, जिस किसी देशमें जाते हैं, हम आपके पावनपाद-पद्मोंसे आनन्दरूप मकरन्दको निरन्तर झरता हुआ पाते हैं । आपके चरणोंमें हमारे कोटिशः प्रणाम हैं ।

तापसन्तस संसारको मुक्तिरूप निरतिशय आनन्दका सन्देश सुनानेवालो ! यह पृथ्वी आपकी पावन चरणधूलिके सम्पर्कसे ही हमारे रहने योग्य बनी हुई है । मेसोपोटेमिया और अरबके सूखे रेगिस्तानमेंसे यदि मूसा, ईसा और रसूल-जैसे अमृतनिर्झर पैदा न होते तो वहाँकी तप्त बालुकामें झुलसने कौन जाता ? योरपके रणक्षेत्रमें यदि हमें सुकरात, प्लेटो, अरस्तू और संत फ्रांसिस-जैसे महान् आत्माओंके दर्शन न होते तो वहाँके लोगोंको शान्तिका पाठ कौन पढ़ाता ? ब्रह्मज्ञानी लॉशे और महात्मा कनफ्यूशसके नामका चीन देश अब भी गौरवके

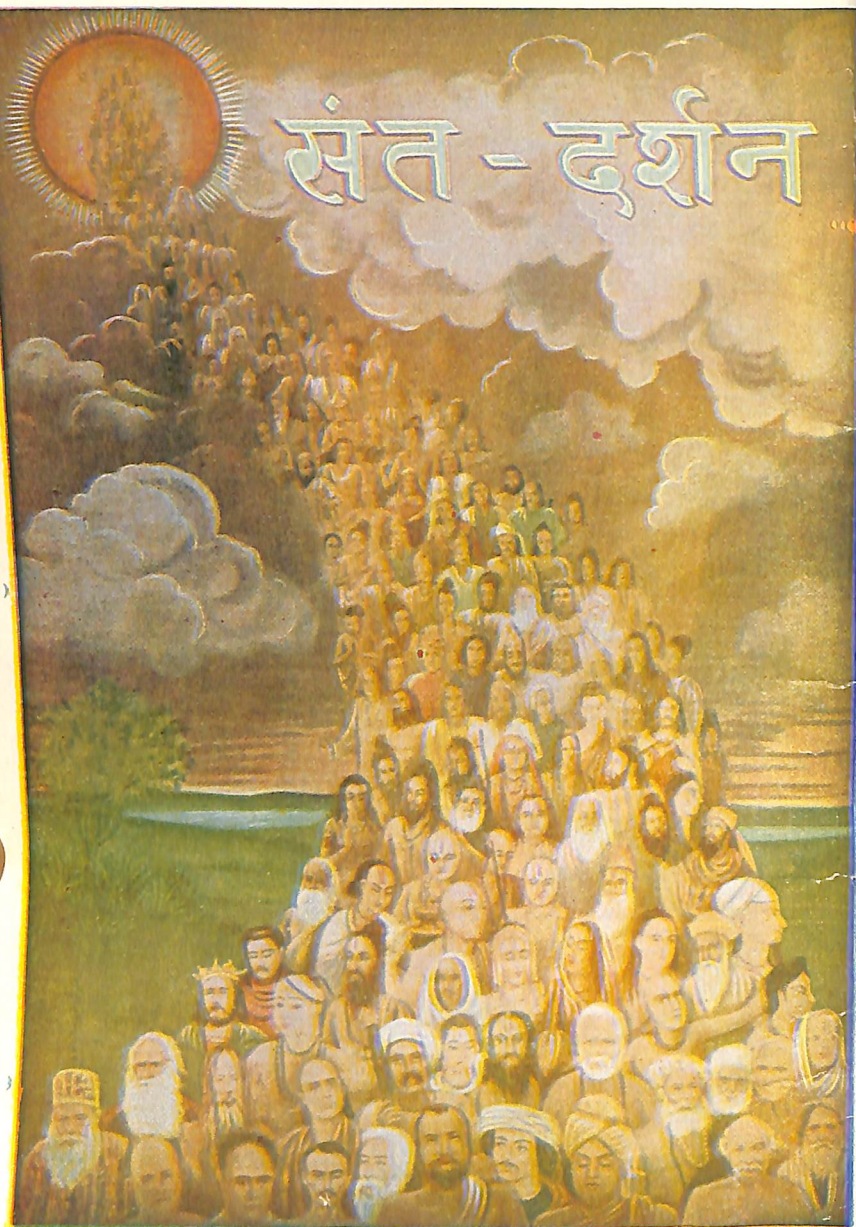
साथ स्मरण करता है और उनके उपदेश उस देशकी एक अमर सम्पत्ति है। हमारा पवित्र भारतवर्ष भी शून्य प्रतीत होने लगेगा यदि व्यास-वाल्मीकि, शुकदेव-नारद, याज्ञवल्क्य-जनक, वसिष्ठ-दधीच, बुद्ध-महावीर, शङ्कर-रामानुज, निम्बार्क-वल्लभ, मध्व-चैतन्य, नानक-कबीर, सूर-तुलसी, नम्मलवार-माणिक्य वाशगर, ज्ञानदेव-तुकाराम, एकनाथ-रामदास और रामकृष्ण-रामतीर्थ प्रभृति संतोंको उसके इतिहासमेंसे निकाल दिया जाय। संत ही भारतवर्षके स्मृतिकार हैं, संत ही सच्चे कवि हैं, संत ही सच्चे सन्देशवाहक हैं और संत ही सबको प्रेम, ज्ञान और शान्तिका पाठ पढ़ानेवाले हैं। उन संतोंके चरणोंमें हमारा बार-बार प्रणाम है।

संत ही मानव-जातिके प्राण हैं, संत ही संसाररूपी पादप-के अमृतफल हैं, संत ही सभ्य समाजको प्रकाश देनेवाले प्रदीप हैं। वही पाप-तापसे पीड़ित मानव-जातिको ऊपर उठानेवाली शक्ति हैं। अतः सभी जातियों और सभी देशोंके सभी संतोंको हम नतमस्तक होकर कोटि-कोटि प्रणाम करते हैं।

स्वामी शुद्धानन्द



संत - दर्शन



॥ श्रीहरिः ॥

संत-वाणी

[प्रेम, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य एवं सदाचारपर

संतोंके वचनोंका संग्रह]

१—सच्चिदानन्द प्रभुके अनेक रूप हैं, जिस साधकने हरिके जिस रूपको देखा है, वह उनके उसी रूपको जानता है । यह सारे रूप उस एक ही बहुरूपिया हरिके हैं ।

२—आँखमिचौनीके खेलमें 'गोल' छू लेनेपर फिर चोर नहीं होना पड़ता, उसी प्रकार ईश्वरको छूनेपर फिर सांसारिक बन्धन नहीं बाँधते ।

३—लोहा जब एक बार पारसको छूकर सोना हो जाता है, तब चाहे उसे मिट्टीके भीतर रखो या कूड़ेमें फेंक दो । वह जहाँ रहेगा सोना ही रहेगा; लोहा न होगा । इसी प्रकार जो ईश्वरको पा चुका

है वह बस्तीमें रहे चाहे जंगलमें, उसको फिर दाग नहीं लग सकता ।

४—ईश्वरको प्राप्त कर लेनेपर मनुष्यका आकार वही रहता है परन्तु उससे अशुभ कर्म नहीं होते ।

५—ईश्वरका दर्शन प्राप्त कर लेनेपर मनुष्य फिर जगत्के जंजालमें नहीं पड़ता, ईश्वरको छोड़कर एक क्षण भी उसे शान्ति नहीं मिलती, एक क्षण भी ईश्वरको छोड़नेमें मृत्यु-कष्ट होता है ।

६—ईश्वरके पास जानेके अनेकों उपाय हैं । सभी धर्म इसीके उपाय दिखला रहे हैं ।

७—हे मनुष्यो ! तुम संसारकी वस्तुओंमें भूले हुए हो, यह सब छोड़कर जब तुम ईश्वरके लिये रोओगे, तब प्रभु उसी वक्त आकर तुम्हें गोदमें उठा लेंगे ।

८—ईश्वरको देखना चाहते हो तो मायाको हटा दो ।

९—इस सत्यको धारण करो कि भगवान् न पराये हैं, न तुमसे दूर हैं और न दुर्लभ ही हैं ।

१०—जिसने तुम्हें यहाँ भेजा है; उसने तुम्हारे भोजनका प्रबन्ध पहलेसे कर रक्खा है ।

११—जिसकी साधना करनेकी तीव्र उत्कण्ठा होती है, भगवान् उसके पास सदुरु भेज देते हैं । गुरुके लिये साधकोंको चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती ।

१२—मनुष्य देखनेमें कोई रूपवान्, कोई कुरूप, कोई साधु, कोई असाधु देख पड़ते हैं, परन्तु उन सबके भीतर एक ही ईश्वर विराजते हैं ।

१३—दुष्ट मनुष्यमें भी ईश्वरका निवास है, परन्तु उनका सङ्ग करना उचित नहीं ।

१४—साधनावस्थामें ऐसे मनुष्योंसे, जो उपासनासे ठट्ठा करते हैं, धर्म तथा धार्मिकोंकी निन्दा करते हैं, एकदम दूर रहना चाहिये ।

१५—मायाके पहचान लेनेपर वह तुरंत भाग जाती है ।

१६—दूधमें मक्खन रहता है, पर मथनेसे ही निकलता है । वैसे ही जो ईश्वरको जानना चाहे वह उसका साधन-भजन करे ।

१७—एक ज्ञान ज्ञान, बहुत ज्ञान अज्ञान !

१८—ईश्वर साकार-निराकार और क्या-क्या है, यह हमलोग नहीं जानते । तुम्हें जो अच्छा लगे उसीमें विश्वास कर उसे पुकारो, तुम उसीके द्वारा उसे पाओगे । मिसरीकी डली चाहे जिस ओरसे, चाहे जिस ढंगसे तोड़कर खाओ मीठी लगेगी ही ।

१९—मन सफेद कपड़ा है, इसे जिस रंगमें ढुवाओगे वही रंग चढ़ जायगा ।

२०—ब्याकुल प्राणसे जो ईश्वरको पुकारते हैं उनको गुरु करनेकी आवश्यकता नहीं है ।

२१—सच्चा शिष्य गुरुके किसी बाहरी कामपर लक्ष्य नहीं करता । वह तो केवल गुरुकी आज्ञाको ही सिर नवाकर पालन करता है ।

२२—पतंग एक बार रोशनी देखनेपर फिर अन्धकारमें नहीं जाता, चींटियाँ गुड़में प्राण दे देती हैं, पर वहाँसे लौटती नहीं । इसी प्रकार भक्त जब एक बार प्रभुदर्शनका रसाखादन कर लेते हैं, तो उसके लिये प्राण दे देते हैं, पर लौटते नहीं ।

२३—संसारमें रहकर जो साधन कर सकते हैं, यथार्थमें वे ही वीर पुरुष हैं ।

२४—संसारमें रहकर सब काम करो, पर खयाल रखो कहीं ईश्वरके लक्ष्यसे मन हट न जाय ।

२५—कुलठा स्त्रियाँ माता-पिता तथा परिवारवालोंके साथ रहकर संसारके सभी कार्य करती हैं, परन्तु उनका मन सदा अपने यारमें लगा रहता है । हे संसारी जीव ! तुम भी मनको ईश्वरमें लगाकर माता-पिता तथा परिवारका काम करते रहो ।

२६—ईश्वरके दर्शनकी इच्छा रखनेवालोंको नाममें विश्वास तथा सत्यासत्यका विचार करते रहना चाहिये ।

२७—मनको स्वतन्त्र छोड़ देनेपर वह नाना प्रकारके संकल्प-विकल्प करने लगता है, परन्तु विचाररूपी अंकुशसे मारनेपर वह स्थिर हो जाता है ।

२८—हरिनाम सुनते ही जिसकी आँखोंसे सच्चे प्रेमाश्रु बह निकलते हैं वही नाम-प्रेमी है ।

२९—डुबकी लगाते ही जाओ, रत्न अवश्य मिलेगा । धीरज रखकर साधना करते रहो, यथासमय अवश्य ही तुम्हारे ऊपर ईश्वरकी कृपा होगी ।

३०—साधु-सङ्गको धर्मका सर्वप्रधान अङ्ग समझना चाहिये ।

३१—मरनेके समय मनमें जैसा भाव होता है, दूसरे जन्ममें वैसी ही गति होती है, इसीलिये जीवनभर भगवान्‌के स्मरणकी आवश्यकता है, जिससे मृत्युके समय केवल भगवान् ही याद आवें ।

३२—बालककी नाई रोना ही साधकका एकमात्र बल है ।

३३—फूलके बड़े होनेपर फूल अपने-आप गिर जाता है; इसी प्रकार देवत्वके बढ़नेसे नरत्व नहीं रहता ।

३४—मनुष्य तभीतक धर्मके विषयमें तर्क-वितर्क करता है, जबतक उसे धर्मका स्वाद नहीं मिलता । स्वाद मिलनेपर वह चुपचाप साधन करने लगता है ।

३५—साधक जब गदगद हो पुकारता है, तब प्रभु विलम्ब नहीं कर सकते ।

३६—ईश्वरके अनन्त नाम हैं, अनन्त रूप हैं, अनन्त भाव हैं । उसे किसी नामसे, किसी रूपसे और किसी भावसे कोई पुकारे वह सबकी पुकार सुन सकता है; वह सबकी मनःकामना पूरी कर सकता है ।

३७—परमात्मा एक है, उसको अनेक लोग अनेक भावोंसे भजते हैं ।

३८—जिस हृदयमें ईश्वरका प्रेम प्रवेश कर गया उस हृदयसे काम, क्रोध, अहंकार आदि सब भाग जाते हैं । वे फिर नहीं ठहर सकते ।

३९—सब धर्मोंका आदर करो, पर अपने मनको अपनी ही धर्म-निष्ठासे तृप्त करो ।

४०—साधन-भजनके द्वारा मनुष्य ईश्वरको पाकर फिर अपने धामको लौट जाता है ।

४१—ईश्वर हमलोगोंके निजके हैं, वह हमलोगोंकी अपनी माता हैं । उनके पास हमलोगोंका जोर करना, मचलना चल सकता है ।

४२—ईश्वर अपने आनेके पूर्व साधकके हृदयमें प्रेम, भक्ति, विश्वास तथा व्याकुलता पहले ही भर देते हैं ।

४३—हृदय स्थिर होनेसे ही ईश्वरका दर्शन होता है । हृदय-सरोवरमें जबतक कामनाकी हवा बहती रहेगी, तबतक ईश्वरका दर्शन असम्भव है ।

४४—सच्चे विश्वासी भक्तका विश्वास तथा भक्ति किसी प्रकार नष्ट नहीं होती । भगवच्चर्चा होते ही वह उन्मत्त हो उठता है ।

४५—विश्वासी भक्त ईश्वरके सिवा सांसारिक धन-मान कुछ भी लेना नहीं चाहता ।

४६—संसारमें ईश्वर ही केवल सत्य है और सभी असत्य है ।

४७—दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर जो व्यक्ति ईश्वरकी प्राप्तिके लिये यत्न नहीं करता उसका जन्म वृथा ही है ।

४८—ईश्वरमें भक्ति और अटूट निष्ठा करके संसारका सब काम करनेमें जीव संसार-बन्धनमें नहीं पड़ता ।

४९—जो ईश्वरका चरणकमल पकड़ लेता है, वह संसारसे नहीं डरता ।

५०—ईश्वरके चरण-कमल पकड़कर संसारका काम करो, बन्धनका डर नहीं रहेगा ।

५१—पहले ईश्वर-प्राप्तिका यत्न करो, पीछे जो इच्छा हो कर सकते हो ।

५२—जो ईश्वरपर निर्भर करते हैं, उन्हें ईश्वर जैसे चलाते हैं वैसे ही चलते हैं, उनकी अपनी कोई चेष्टा नहीं होती ।

५३—गुरु लाखों मिलते हैं, पर चेला एक भी नहीं मिलता । उपदेश करनेवाले अनेकों मिलते हैं, पर उपदेश पालन करनेवाले थिरले ही ।

५४—ईश्वरका प्रकाश सबके हृदयमें समान होनेपर भी वह साधुओंके हृदयमें अधिक प्रकाशित होता है ।

५५—समाधि-अवस्थामें मनको उतना ही आनन्द मिलता है, जितना जीती मछलीको तालाबमें छोड़ देनेसे ।

५६—ज्ञान पुरुष है, भक्ति स्त्री है । पुरुष मायानारीसे तभी छूट सकता है जब वह परम वैरागी हो । किन्तु भक्तिसे तो माया सहज ही छूटी हुई है ।

५७—काजलकी कोठरीमें कितना भी बचकर रहो, कुछ-न-कुछ कसौंस लगेगी ही । इसी प्रकार युवक-युवती परस्पर बहुत सावधानीके साथ रहें तो भी कुछ-न-कुछ काम जागेगा ही ।

५८—जिस प्रकार दर्पण स्वच्छ होनेपर उसमें मुँह दिखलायी देने लगता है, उसी प्रकार हृदयके स्वच्छ होते ही उसमें भगवान्का रूप दिखायी देने लगता है ।

५९—ईश्वरको अपना समझकर किसी एक भावसे उसकी सेवा-पूजा करनेका नाम भक्तियोग है ।

६०—कलियुगमें और योगोंकी अपेक्षा भक्तियोगसे सहज ही ईश्वरकी प्राप्ति होती है ।

६१—ध्यान करना चाहते हो तो तीन जगह कर सकते हो—मनमें, घरके कोनेमें और वनमें ।

६२—केवल ईश्वर-ज्ञान ही ज्ञान है और सब अज्ञान है ।

६३—भगवान् भक्तिके वश हैं, वे अपनी ओर ममता और प्रेम चाहते हैं ।

६४—जिसके मनमें ईश्वरका प्रेम उत्पन्न हो गया, उसे संसारका कोई सुख अच्छा नहीं लगता ।

६५—जो प्रभुके प्रेममें बावला हो गया है, जिसने अपना सब कुछ उनके चरणोंमें अर्पण कर दिया है, उसका सारा भार प्रभु अपने ऊपर ले लेते हैं ।

६६—संसारमें आकर भगवान्‌के विषयमें तर्क, युक्ति, विचार आदि करनेसे कुछ फल नहीं । जो प्रभुको प्राप्त कर आनन्दानुभव कर सकता है, वही धन्य है ।

६७—सभी मनुष्य जन्म-जन्मान्तरमें कभी-न-कभी भगवान्‌को देखेंगे ही ।

६८—सूईके छेदमें तागा पहनाना चाहते हो तो उसे पतला करो । मनको ईश्वरमें पिरोना चाहते हो तो दीन-हीन-अकिञ्चन बनो ।

६९—भक्तका हृदय भगवान्‌की बैठक है ।

७०—संसारमें जो जितना सह सकता है, वह उतना ही महात्मा है ।

७१—जिसका मनरूप चुंबकयन्त्र भगवान्‌के चरणकमलोंकी ओर रहता है, उसके डूब जाने या राह भूलनेका डर नहीं ।

७२—साधनकी राहमें कई बार गिरना-उठना होता है, परन्तु प्रयत्न करनेपर फिर साधन ठीक हो जाता है ।

७३—सर्वदा सत्य बोलना चाहिये । कलिकालमें सत्यका आश्रय लेनेके बाद और किसी साधनका काम नहीं । सत्य ही कलिकालकी तपस्या है ।

७४—संसारके यश और निन्दाकी कोई परवा न करके ईश्वरके पथमें चलना चाहिये ।

७५—एक महात्माकी कृपासे कितने ही जीवोंका उद्धार हो जाता है ।

७६—साधकके भीतर यदि कुछ भी आसक्ति है तो समस्त साधना व्यर्थ चली जायगी ।

७७—जो ईश्वरमें नित्य डूबा रहता है, उसकी प्रेमाभक्ति कभी नहीं सूखती । परन्तु दो-एक दिनकी भक्तिसे ही जो सन्तुष्ट तथा निश्चिन्त रहता है, सीकेपर रखे हुए रिसते घड़ेके जलके समान वह भक्ति दो दिन बाद ही सूख जाती है ।

७८—जगत्में ईश्वर व्याप्त हैं, पर उनके पानेके लिये साधना करनी पड़ती है ।

७९—जिस मनसे साधना करनी है; वही यदि विषयासक्त हो जाय तो फिर साधना असम्भव ही समझो ।

८०—जलमें नाव रहे तो कोई हानि नहीं, पर नावमें जल नहीं रहना चाहिये । साधक संसारमें रहे तो कोई हानि नहीं, परन्तु साधकके भीतर संसार नहीं होना चाहिये ।

८१—मन और मुखको एक करना ही साधना है ।

८२—ईश्वर महान् होनेपर भी अपने भक्तका तुच्छ उपहार प्रेमपूर्वक प्रसन्न होकर ग्रहण करते हैं ।

८३—जिस आदमीकी ईश्वरके नाममें रुचि है, भगवान्की जिसकी लगन लग गयी है, उसका संसार-विकार अवश्य दूर होगा । उसपर भगवान्की कृपा अवश्य-अवश्य होगी ।

८४—अपने सब कर्मफल ईश्वरको अर्पण कर दो । अपने लिये किसी फलकी कामना न करो ।

८५—वासना लेशमात्र भी रही तो भगवान् नहीं मिल सकते ।

८६—अहङ्कारकी आड़ होनेसे ईश्वर नहीं देख पड़ते । अहं-बुद्धिके जाते ही सब जंजाल दूर हो जाते हैं ।

८७—मैं प्रभुका दास हूँ, मैं उसकी सन्तान हूँ, मैं उसका अंश हूँ—ये सब अहङ्कार अच्छे हैं । ऐसे अभिमानसे भगवान् मिलते हैं ।

८८—जिसका (साधन) यहाँ ठीक है उसका वहाँ भी ठीक है और जिसका यहाँ नहीं है उसका वहाँ भी नहीं है ।

८९—जिसका जैसा भाव होता है उसको वैसा ही फल मिलता है ।

९०—सफेद कपड़ेमें थोड़ी भी स्याहीका दाग पड़नेसे वह दाग बहुत स्पष्ट दीखता है, उसी प्रकार पवित्र मनुष्योंका थोड़ा दोष भी अधिक दिखलायी देता है ।

९१—जिस घरमें नित्य हरि-संकीर्तन होता है वहाँ कलियुग प्रवेश नहीं कर सकता ।

९२—जब भगवान्‌के आश्रित हो रहे हो तो यह न हुआ, वह न हुआ आदि चिन्ताओंमें मत पड़ो ।

९३—विश्वासी भक्त आजीवन भगवान्‌का दर्शन न मिलकर भी भगवान्‌को नहीं छोड़ता ।

९४—संसार कच्चा कुआँ है । इसके किनारेपर खूब सावधानीसे खड़े होना चाहिये । तनिक असावधान होते ही कुएँमें गिर पड़ोगे, तब निकलना कठिन हो जायगा ।

९५—संसारी ! तुम संसारका सब काम करो; किन्तु मन हर घड़ी संसारसे विमुख रक्खो ।

९६—कामिनी और काञ्चन ही माया है । इनके आकर्षणमें पड़नेपर जीवकी सब स्वाधीनता चली जाती है । इनके मोहके कारण ही जीव भव-बन्धनमें पड़ जाता है ।

९७—संसारमें रहनेसे सुख-दुःख रहेगा ही । ईश्वरकी बात अलग है और उसके चरण-कमलमें मन लगाना और है । दुःखके हाथसे छुटकारा पानेका और कोई उपाय है नहीं ।

९८—साधु-संग करनेसे जीवका मायारूपी नशा उतर जाता है ।

९९—जिससे दस आदमी अच्छी प्रेरणा पाते हों तथा शुभ-कार्यमें लगते हों तो समझना चाहिये कि उसके भीतर भगवान्की विभूति अधिक है ।

१००—जो सोचता है 'मैं जीव हूँ'—वह जीव है; और जो सोचता है 'मैं शिव हूँ' वह शिव है ।

१०१—एक ईश्वरको पकड़े रहनेसे इहलौकिक, पारलौकिक अनेकों लाभ होते हैं, पर ईश्वरको त्यागते ही जीवका सब कुछ व्यर्थ हो जाता है ।

१०२—व्याकुल होकर उसके लिये रोनेसे ही 'वह' मिलता है । लोग लड़के-बच्चेके लिये, रुपये-पैसेके लिये कितना रोते हैं, किन्तु भगवान्के लिये क्या कोई एक बूँद भी आँसू टपकाता है; उसके लिये रोओ, आँसू बहाओ, तब उसको पाओगे ।

१०३—ईश्वरके पानेका उपाय केवल विश्वास है । जिसे विश्वास हो गया, उसका काम बन गया ।

१०४-मुँहमें राम बगळमें छूरी मत रक्खो ।

१०५-ईश्वरके नाममें ऐसा विश्वास चाहिये कि मैंने उसका नाम लिया है इससे अब मेरे पाप कहाँ ? मेरे अब बन्धन कहाँ ?

१०६-एक ईश्वर ही सबका गुरु है ।

१०७-जबतक अज्ञान है तभीतक चौरासीका चक्कर है ।

१०८-दूसरेको सिखानेके लिये व्याकुल मत हो । जिससे तुम्हें ज्ञान-भक्ति प्राप्त हो, ईश्वरके चरण-कमलमें मन लगे वही उपाय करो ।

१०९-परनिन्दा और परचर्चा कभी न करो ।

११०-विश्वास तारता है और अहङ्कार डुबाता है ।

१११-पहले संसार करके पीछे भगवान्की प्राप्तिकी इच्छा करते हो । ऐसा न करके पहले भगवान्को लेकर पीछे संसार करनेकी इच्छा क्यों नहीं करते ? इससे बहुत सुख पाओगे ।

११२-सात्त्विक साधकमें बाहरी दिखावेका भाव तनिक भी नहीं रहता ।

११३-जो मूर्ख वासनाके रहते गेरुआ वस्त्र धारण करता है उसका यह लोक और परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं ।

११४-जीर साधक इस संसारका बोझ सिरपर उठाकर भी भगवान्की ओर निहारते रह सकते हैं ।

११५-विषयासक्ति जितनी ही घटेगी ईश्वरके प्रति प्रेम भी उतना ही बढ़ता जायगा ।

११६-देहको चाहे जितना सुख-दुःख हो, भक्त उसका खयाल नहीं करते । उनकी वृत्ति तो प्रभुके चरणोंमें अनन्यभावसे लगी रहती है ।

११७—तत्त्वज्ञान होनेसे मनुष्यका पूर्व स्वभाव बदल जाता है ।

११८—स्वामीके जीते रहते ही जो स्त्री ब्रह्मचर्य धारण करती है वह नारी नहीं है, वह तो साक्षात् भगवती हैं ।

११९—ईश्वरका प्रेम पाकर मनुष्य सारी बाह्य वस्तुओंको भूल जाता है । जगत्का खयाल उसको नहीं रहता, यहाँतक कि सबसे प्रिय अपने शरीरको भी भूल जाता है । जब ऐसी अवस्था आवे तब समझना चाहिये कि प्रेम प्राप्त हुआ ।

१२०—प्रपञ्चमें मनुष्यका आत्मपतन हो ही जाता है ।

१२१—अहङ्कार करना व्यर्थ है । जीवन, यौवन कुछ भी यहाँ नहीं रहेगा । सब दो घड़ीका सपना है ।

१२२—मासे रोककर भक्ति माँगोगे तो वह अवश्य देगी । इसमें जरा भी शक नहीं है ।

१२३—ज्ञानोन्माद होनेसे कर्तव्य फिर कर्तव्य नहीं रह जाता । उस अवस्थामें भगवान् उसका भार ले लेते हैं ।

१२४—ईश्वर हैं—इस बातका जिसे ठीक बोध हो गया वह फिर सांसारिक मायामें नहीं पड़ता ।

१२५—पुस्तकें हजार पढ़ो, मुखसे हजार श्लोक कहो पर व्याकुल होकर उसमें डुबकी नहीं लगानेसे उसे पा न सकोगे ।

१२६—पहले ईश्वरको प्राप्त करनेकी चेष्टा करो । गुरुवाक्यमें विश्वास करके कुछ कर्म करो । गुरु न हों तो भगवान्के पास व्याकुल-प्राणसे प्रार्थना करो । वह कैसे हैं यह उन्हींकी कृपासे मालूम हो जायगा ।

१२७—सांसारिक पुरुष धन, मान-विषयादि असार वस्तुओंका संग्रह कर सुखकी आशा करते हैं। परन्तु वह सब किसी प्रकार भी सुख नहीं दे सकते।

१२८—भगवान् जीवको पापमें लिपटा रहने नहीं देता। वह दया कर झट उसका उद्धार कर देता है।

१२९—भगवान् सबको देखते हैं; किन्तु जबतक वे किसीको अपनी इच्छासे दिखायी नहीं देते तबतक कोई उनको देख या पहचान नहीं सकता।

१३०—पूर्व दिशामें जितना ही चलोगे पश्चिम दिशा उतनी ही दूर होती जायगी। इसी प्रकार धर्मपथपर जितना ही अग्रसर होओगे, संसार उतनी ही दूर पीछे छूटता जायगा।

१३१—कलियुगमें प्रेमपूर्ण ईश्वरभक्ति ही सर्वश्रेष्ठ तथा सार वस्तु है।

१३२—प्रेमसे हरिनाम गाओ। प्रेमसे कीर्तन-रंगमें मस्त होकर नाचो। इससे तरोगे, तरोगे। संसारसे तर जाओगे।

१३३—गुरु ही माता, गुरु ही पिता और गुरु ही हमारे कुलदेव हैं। महान् संकट पड़नेपर आगे और पीछे वही हमारी रक्षा करनेवाले हैं। यह काया वाक् और मन उन्हींके चरणोंमें अर्पण हैं।

१३४—कीर्तनसे स्वधर्मकी वृद्धि होती है; कीर्तनसे स्वधर्मकी प्राप्ति होती है, कीर्तनके सामने मुक्ति भी लज्जित होकर भाग जाती है।

१३५—कलियुगमें नाम-स्मरण और हरि-कीर्तनसे जीवमात्रका उद्धार होता है।

१३६—सब दानोंमें श्रेष्ठ अन्नदान है और उससे भी श्रेष्ठ ज्ञान-दान है ।

१३७—बैठकर राम-नामके ध्यानका अनुष्ठान करें, उसीमें मनको दृढ़ कर एकनिष्ठ-भावमें मग्न हों । इससे बढ़कर कोई साधन है नहीं ।

१३८—परद्रव्य और परदाराको छूत मानें । इससे बढ़कर निर्मल कोई तप है नहीं ।

१३९—इस कलियुगमें राम-नामके सिवा कोई आधार है नहीं ।

१४०—मनमें भगवान्‌का रूप ऐसे आकर बैठ जाय कि जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति कोई भी अवस्था याद न आवे ।

१४१—इन कानोंसे तेरा नाम और गुण सुनूँगा । इन पैरोंसे तीर्थोंके ही रास्ते चलूँगा । यह नश्वर देह किस काम आवेगी ?

१४२—भगवन् ! मुझे ऐसी प्रेमभक्ति दे कि मुँहसे तेरा ही नाम अखण्डरूपसे लेता रहूँ ।

१४३—अपनी स्तुति और दूसरोंकी निन्दा, हे गोविन्द ! मैं कभी न करूँ । सब प्राणियोंमें हे राम ! मैं तुम्हें ही देखूँ और तेरे प्रसादसे ही संतुष्ट रहूँ ।

१४४—भगवान्‌का आवाहन किया पर इस आवाहनमें विसर्जनका कुछ काम नहीं । जब चित्त उसीमें लीन होता है तो गाते भी नहीं बनता ।

१४५—जो सब देवोंका पिता है उसके चरणोंकी शरण

लेते ही सारी माया छूट जाती है, सब द्वन्द्व नष्ट हो जाते हैं ।

१४६-वह ज्ञानदीप जलाया जिसमें चिन्ताका कोई काजल नहीं और आनन्दभरित प्रेमसे देवाधिदेव श्रीहरिकी आरती की । सब भेद और विकार उड़ गये ।

१४७-भीतर-बाहर, चर-अचरमें सर्वत्र श्रीहरि ही विराज रहे हैं । उन्होंने मेरा मन हर लिया, मेरा-तेरा भाव निकाल दिया ।

१४८-योग, तप, कर्म और ज्ञान—ये सब भगवान्‌के लिये हैं । भगवान्‌के बिना इनका कुछ भी मूल्य नहीं है ।

१४९-भगवान्‌के चरणोंमें संसारको समर्पित करके भक्त निश्चिन्त रहते हैं और तब वह सारा प्रपञ्च भगवान्‌का ही हो जाता है ।

१५०-गङ्गा सागरसे मिलने जाती है; परन्तु जाती हुई जगत्‌का पाप-ताप निवारण करती है । उसी प्रकार आत्मस्वरूपको प्राप्त जो संत हैं वे अपने सहज कर्मोंसे संसारमें बँधे बन्दियोंको छुड़ाते हैं ।

१५१-संतोंकी जीवनचर्या संसारके लिये आइनेके समान होती है ।

१५२-सब भूतोंमें समदृष्टिसे केवल एक हरिको ही देखना चाहिये ।

१५३-जो निर्द्वन्द्व होकर निन्दा सह लेता है उसकी माता धन्य है ।

१५४-भगवान्‌ ही सब साधनोंके साध्य हैं और सब चराचर

प्राणियोंमें भगवान्‌को देखकर सर्वत्र अखण्ड-भगवद्बुद्धिको स्थिर रखना और सबके कल्याणका उद्योग करना अर्थात् लोकसंग्रह और लोकोपकारमें तन-मन-प्राण अर्पण करना ही सच्ची हरिभक्ति है ।

१५५—समदर्शी, निरपेक्ष और निरहंकार होकर सब भूतोंमें भगवान्‌ भरे हैं ऐसा जानकर जो लोकोपकार होता है वही उत्तम हरि-भजन है ।

१५६—सब प्राणियोंमें भगवान्‌को विद्यमान जानकर उनके हितार्थ अहंभावरहित होकर कायेन मनसा वाचा उद्योग करना ही भगवान्‌की सेवा है ।

१५७—जो स्थूल है वही सूक्ष्म है, दृश्य है वही अदृश्य है, व्यक्त है वही अव्यक्त है, सगुण है वही निर्गुण है, अंदर है वही बाहर है ।

१५८—भगवान्‌ सर्वत्र हैं, पर जो भक्त नहीं हैं, उन्हें नहीं दिखायी देते । जलमें, थलमें, पत्थरमें कहाँ नहीं हैं ? जिधर देखो उधर ही भगवान्‌ हैं, पर अभक्तोंको केवल शून्य दिखायी देता है ।

१५९—एकत्वके साथ सृष्टिको देखनेसे दृष्टिमें भगवान्‌ ही भर जाते हैं ।

१६०—धन्य हैं सद्गुरु जिन्होंने गोविन्द दिखा दिया ।

१६१—संतोंके घर-द्वार, अंदर-बाहर, कर्ममें, वाणीमें और मनमें भगवद्भक्तिके सिवा और कुछ भी नहीं मिल सकता ।

१६२—संतोंके कर्म, ज्ञान और भक्ति हरिमय होते हैं । शान्ति, क्षमा, दया आदि दैवी गुण संतोंके आँगनमें लोटा करते हैं ।

१६३—संत-सेवा मुक्तिका द्वार है ।

१६४—भगवान् स्वयं संतके घरमें घुसकर अपना दखल जमाते हैं ।

१६५—सद्गुरुके सामने वेद मौन हो गये, शास्त्र दिवाने हो गये और वाक् भी बंद हो गयी । सद्गुरुकी कृपादृष्टि जिसपर पड़ती है, उसकी दृष्टिमें सारी सृष्टि श्रीहरिमय हो जाती है ।

१६६—धन्य हैं श्रीगुरुदेव जिन्होंने अखण्ड नाम-स्मरण करा दिया ।

१६७—सद्गुरुचरणोंका लाभ जिसे हो गया, वह प्रपञ्चसे मुक्त हो गया ।

१६८—सारा प्रपञ्च छोड़कर भगवच्चरणोंका ही सदा ध्यान करना चाहिये ।

१६९—सद्गुरुका सहारा जिसे मिल गया, कलिकाल उसका कुल बिगाड़ नहीं सकता ।

१७०—भक्ति, वैराग्य और ज्ञानका स्वयं आचरण करके दूसरों-को इसी आचरणमें लगानेका नाम ही लोकसंग्रह है ।

१७१—सिद्धियोंके मनोरथ केवल मनोरञ्जन हैं, उनमें परमार्थ नहीं, प्रायः बने हुए लोग ही सिद्धियोंका बाजार लगाते हैं और गरीबोंको ठगते हैं ।

१७२—कलिकाल बड़ा भीषण है, इसमें केवल प्रभुके नामका ही सहारा है ।

१७३—इन्द्र और चींटी दोनों देहतः समान ही हैं । देहमात्र ही नश्वर है । सबके शरीर नाशवान् हैं । शरीरका पर्दा

हटाकर देखो तो सर्वत्र भगवान् ही हैं । भगवान् के सिवा और क्या है ! अपनी दृष्टि चिन्मय हो तो सर्वत्र श्रीहरि ही हैं ।

१७४—श्रीकृष्ण तो सर्वत्र रम रहे हैं । वह सम्पूर्ण विश्वके अंदर और बाहर व्याप्त हैं । जहाँ हो वहीं देखो, वहीं तुम्हें वह दर्शन देंगे ।

१७५—दृश्य, दर्शन, द्रष्टा—तीनोंको पारकर देखो तो बस श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्ण हैं ।

१७६—भगवान् श्रीकृष्ण समस्त जगत् के एकमात्र स्वामी हैं । उनका ऐश्वर्य, माधुर्य, वात्सल्य सभी अनन्त है, अपार है । जिसे उसका एक कण भी मिल गया वह धन्य-धन्य हो गया ।

१७७—सभी वैभववाले, बड़ी आयुवाले, बड़ी महिमावाले आखिर चले गये मृत्युपंथमें ही । सब चले गये; परन्तु एक ही रहे जो स्वरूपाकार हुए—आत्मज्ञानी हुए ।

१७८—जिस वाणीमें हरिकथा-प्रेम है, वही वाणी सरस है ।

१७९—प्रेमके बिना श्रुति, स्मृति, ज्ञान, ध्यान, पूजन, श्रवण, कीर्तन सब व्यर्थ है ।

१८०—संतका जीवन और मरण हरिमय होता है, हरिके सिवा और है ही क्या कि हो । फिर मृत्युके समय भी हरिस्मरणके सिवा और क्या हो सकता है ?

१८१—जो चीनीकी मिठास है, वही चीनी है । वैसे ही चिदात्मा जो है, वही यह लोक है, संसारमें हरिसे भिन्न और कुछ भी नहीं है ।

१८२—जो कुछ सुन्दर दिखायी देता है वह श्रीकृष्णके ही

अंशसे है, उससे आँखें ऐसी दीयानी हो गयीं कि भगवान्‌के मयूर-पिच्छमें जा लगीं ।

१८३—जिसने एक बार श्रीकृष्णको देखा, उसकी आँखें फिर उससे नहीं फिरतीं । अधिकाधिक उसी रूपको आलिङ्गन करती हैं और उसीमें लीन हो जाती हैं ।

१८४—कुल-कर्मको मिटाना हो, अपने साथ सबको मिट्टीमें मिलाना हो, जीवतकका अन्त करना हो तो कोई कृष्णको वरण करे ।

१८५—उठो ! श्रीकृष्णके चरणोंका वन्दन करो । लज्जा और अभिमान छोड़ दो, मनको निर्विकल्प कर लो और वृत्तिको सावधान करके हरिचरणोंका वन्दन करो ।

१८६—श्रीचरणोंका आलिङ्गन होते ही अहं-सोऽहंकी गाँठें खुल गयीं । सारा संसार आनन्दमय हो गया । सेव्य-सेवक-भावका कोई चिह्न नहीं रह गया । देवी और देव एक हो गये ।

१८७—सच्चा विरक्त उसीको कहना चाहिये जो मानके स्थानसे दूर रहता है । वह सत्सङ्गमें स्थिर रहता है । अपना कोई नया सम्प्रदाय नहीं चलाता, नया अखाड़ा नहीं खोलता, अपनी गद्दी नहीं कायम करता । जीविकाके लिये दीन होकर किसीकी खुशामद नहीं करता । वह लौकिक नहीं होता, उसे बखालंकारकी इच्छा नहीं होती, परान्नमें रुचि नहीं होती, स्त्रियोंको देखना उसे अच्छा नहीं लगता ।

१८८—अपनी स्त्रीके सिवा अन्य स्त्रीसे कोई सम्बन्ध न रखे । अपनी स्त्रीसे भी केवल समुचित ही सम्बन्ध रखे और चित्तको कभी आसक्त न होने दे ।

१८९—प्रमदासङ्गसे बराबर बचना चाहिये । जो निरभिमान होकर निःसङ्ग हो गया हो, वही अखण्ड एकान्त सेवन कर सकता है ।

१९०—स्त्री, धन और प्रतिष्ठा चिरञ्जीव-पद-प्राप्तिके साधनमें तीन महान् विघ्न हैं ।

१९१—सच्चा अनुताप और शुद्ध सात्त्विक वैराग्य यदि न हो तो श्रीकृष्णपद प्राप्त करनेकी आशा करना केवल अज्ञान है ।

१९२—सुनो, मेरा पागल प्रेम ऐसा है कि सुन्दर श्याम श्रीराम ही मेरे अद्वितीय ब्रह्म हैं और कुछ मुझे नहीं मालूम । रामके बिना जो ब्रह्मज्ञान है हनुमान्जी गरजकर कहते हैं कि उसकी हमें कोई जरूरत नहीं । हमारा ब्रह्म तो राम है ।

१९३—जो मोल लेकर गंदी मदिरा पान करता है, वही उसके नशेमें चूर होकर नाचता गाता है, तब जिसने भगवत्प्रेमकी दिव्य मदिराका सेवन किया हो वह कैसे चुपचाप बैठ सकता है ?

१९४—भगवान्के चरणोंमें अपरोक्ष स्थिति हो जाय तो वहाँ क्षणार्धमें होनेवाली प्राप्तिके सामने त्रिभुवन-विभव-सम्पत्ति भी भक्तके लिये तृणके समान है ।

१९५—याचना किये बिना यदृच्छासे जो कुछ मिले उसे साधक मङ्गलमय प्रभुका महाप्रसाद समझकर खानन्दसे भोग लगावे ।

१९६—दारा, सुत, गृह, प्राण सब भगवान्को अर्पण कर देना चाहिये । यह पूर्ण भागवत धर्म है । मुख्यतः इसीका नाम भजन है ।

१९७—साधु-संतोंसे मैत्री करो, सबसे पुराना परिचय (प्रेम) रक्खो, सबके श्रेष्ठ सखा बनो, सबके साथ समान रहो ।

१९८—भगवान्की आचारसहित भक्ति सब योगोंका योगगह्वर, वेदान्तका निजभाण्डार, सकल सिद्धियोंका परम सार है ।

१९९—गृहस्थाश्रममें रहकर भी जिसका चित्त प्रभुके रंगमें रँग गया और इस कारण जिसकी गृहासक्ति छूट गयी, उसे गृहस्थाश्रममें भी भगवत्प्राप्ति होती है और निजबोधमें ही सारी सुख-सम्पत्ति मिल जाती है ।

२००—जीव और परमात्मा दोनों एक हैं । इस बातको जान लेना ही ज्ञान है । वह ऐक्य लाभकर परमात्मसुख भोगना सम्यक् विज्ञान है ।

२०१—मैं ही देव हूँ, मैं ही भक्त हूँ, पूजाकी सामग्री भी मैं ही हूँ, मैं ही अपनी पूजा करता हूँ । यह अभेद उपासनाका एक रूप है ।

२०२—सहज अनुकम्पासे प्राणियोंके साथ अन्न, वस्त्र, दान, मान इत्यादिसे प्रियाचरण करना चाहिये । यही सबका स्वधर्म है ।

२०३—पिता स्वयमेव नारायण हैं । माता प्रत्यक्ष लक्ष्मी हैं ऐसे भावसे जो भजन करता है, वही सुपुत्र है ।

२०४—बहते पानीपर चाहे जितनी लकीरें खींचो एक भी लकीर न खिंचेगी, वैसे ही सत्त्वशुद्धिके बिना आत्मज्ञानकी एक भी किरण प्रकट न होगी ।

२०५—धन्य है नरदेहका मिलना, धन्य है साधुओंका सत्सङ्ग, धन्य हैं वे भक्त जो भगवद्भक्तिमें रँग गये ।

२०६—वैष्णवोंको जो एक जाति मानता है, शाळग्रामको जो एक पाषाण समझता है, सद्गुरुको जो एक मनुष्य मानता है, उसने कुछ न समझा ।

२०७—जो निज सत्ता छोड़कर पराधीनतामें जा फँसा, उसे स्वप्नमें भी सुखकी वार्ता नहीं मिलती ।

२०८—जो धनके लोभमें फँसा हुआ है, उसे कल्पान्तमें भी मुक्ति नहीं मिल सकती । जो सर्वदा स्त्री-कामी है उसे परमार्थ या आत्मबोध नहीं मिल सकता ।

२०९—जब सूर्यनारायण प्राची दिशामें आते हैं तब तारे अस्त हो जाते हैं । वैसे ही भक्तिके प्रबोधकालमें कामादिकोंकी होली हो जाती है ।

२१०—सत्यके समान कोई तप नहीं है, सत्यके समान कोई जप नहीं है । सत्यसे सद्रूप प्राप्त होता है । सत्यसे साधक निष्पाप होते हैं ।

२११—वर्णोंमें चाहे कोई सबसे श्रेष्ठ क्यों न हो वह यदि हरिचरणोंसे विमुख है तो उससे वह चाण्डाल श्रेष्ठ है जो प्रेमसे भगवद्भजन करता है ।

२१२—अन्तःशुद्धिका मुख्य साधन हरिकीर्तन है । नामके समान और कोई साधन है नहीं ।

२१३—भक्त जहाँ रहता है, वहाँ सभी दिशाएँ सुखमय हो जाती हैं । वह जहाँ खड़ा होता है, वहाँ सुखसे महासुख आकर रहता है ।

२१४—अभिमानका सर्वथा त्याग ही त्यागका मुख्य लक्षण है ।

२१५—सम्पूर्ण अभिमानको त्यागकर प्रभुकी शरणमें जानेसे तुम जन्म-मरणादिके द्वन्द्वोंसे तर जाओगे ।

२१६—जो हृदयस्थ है उसकी शरण लो ।

२१७—प्रभुकी प्राप्तिमें सबसे बड़ा बाधक है अभिमान !

२१८—प्रभुकी शरणमें जानेसे प्रभुका सारा बल प्राप्त हो जाता है, सारा भवभय भाग जाता है । कलिकाल काँपने लगता है ।

२१९—समर्पणका सरल उपाय है नामस्मरण । नामस्मरणसे पाप भस्म होते हैं ।

२२०—सकाम नामस्मरण करनेसे वह नाम जो इच्छा हो वह पूरी कर देता है । निष्काम नामस्मरण करनेसे वह नाम पापको भस्म कर देता है ।

२२१—मनके श्रीकृष्णार्पण होनेसे भक्ति उल्लसित होती है ।

२२२—अष्ट महासिद्धियाँ भक्तके चरणोंमें लोटा करती हैं, वह उनकी ओर देखतातक नहीं ।

२२३—जिस भक्तको प्रभुकी भक्ति प्राप्त हो जाती है, उसके सभी व्यापार भगवदाकार हो जाते हैं ।

२२४—भक्त जिस ओर रहता है । वह दिशा श्रीकृष्ण बन जाती है । वह जब भोजन करने बैठता है तब उसके लिये हरि ही षट्स हो जाते हैं । उसे जल पिछानेके लिये प्रभु ही जल बन जाते हैं ।

२२५—जब भक्त पैदल चलता है तो शान्ति पद-पदपर उसके लिये मृदु पदासन बिछाती और उसकी आरती उतारती है ।

२२६—शम-दम आज्ञाकारी सेवक होकर भक्तके द्वारपर हाथ जोड़ खड़े रहते हैं । ऋद्धि-सिद्धि दासी बनकर घरमें काम करती हैं । विवेक ठहलुआ सदा हाजिर ही रहता है ।

२२७—भक्तके प्रत्येक शब्दसे प्रभुकी ही वार्ता उठती है । और श्रोता सुनकर तल्लीन हो जाते हैं ।

२२८—चारों मुक्ति मिलकर भक्तके घर पानी भरती हैं और श्रीके साथ श्रीहरि भी उसकी सेवामें रहते हैं—औरोंकी बात ही क्या है ?

२२९—भक्त भगवान्की आत्मा है, वह भगवान्का जीवन है, प्राण है ।

२३०—प्रभु पूर्णतः भक्तके अंदर हैं और भक्त पूर्णतः भगवान्के अंदर है ।

२३१—साधनोंमें मुख्य साधन श्रीहरिकी भक्ति ही है । भक्तिमें भी नामकीर्तन विशेष है । नामसे चित्त-शुद्धि होती है—साधकोंको स्वरूप-स्थिति प्राप्त होती है ।

२३२—नाम-जैसा और कोई साधन नहीं है । नामसे भव-बन्धन कट जाते हैं ।

२३३—मनने सबको बाँध रखा है । मनको बाँधना आसान नहीं । मनने देवताओंको पस्त कर डाला । वह इन्द्रियोंको क्या समझता है ।

२३४—मनकी मार बड़ी जबरदस्त है । मनके सामने कौन ठहर सकता है ?

२३५—हीरेसे हीरा काटा जाता है वैसे ही मनसे मन पकड़ा जाता है, पर यह भी तब होता है जब पूर्ण श्रीहरिकृपा होती है ।

२३६—मन ही मनका बोधक, मन ही मनका साधक, मन ही मनका बाधक और मन ही मनका धातक है ।

२३७—अष्टाङ्गयोग, वेदाध्ययन, सत्यवचन तथा अन्य जो-जो साधन हैं उन साधनोंसे जो कुछ मिलता है वह सब भगवद्भजनसे प्राप्त होता है ।

१९५४—तीनों लोकोंमें इन चार बातोंसे बढ़कर मनुष्यको प्रसन्न करनेवाली और कोई बात नहीं है—दान, मैत्री, सब जीवों-पर दया और मीठे वचन ।

१९५५—सरलता बिना कोई भी मनुष्य शुद्ध नहीं हो सकता; अशुद्ध जीव धर्म नहीं कर सकता, धर्म बिना मोक्ष नहीं होता और मोक्ष बिना सुखकी प्राप्ति असम्भव है ।

१९५६—जिस प्रकार वृक्ष जल सींचनेवाले और फल-फूल तोड़नेवाले दोनोंके साथ समान बर्ताव करता है उसी प्रकार सज्जन भी अपनी भलाई करनेवाले और बुराई करनेवाले दोनोंके साथ एक-सा व्यवहार करते हैं ।

१९५७—भगवान्‌के नामका उच्चारण करनेसे सभी पाप जल जाते हैं, इसमें मनुष्यकी अवल श्रद्धा होनी चाहिये ।

१९५८—जिस नन्दनन्दनने यमुनाके तटपर सब गोपोंको बचानेके लिये कालियका मथन किया, वह क्या शरण चाहने-वालोंको शरण नहीं देगा ?

१९५९—जो लोग काम, क्रोध, मद और लोभमें रत हैं तथा दुःखरूप गृहमें आसक्त हैं, वे भवकूपमें पड़े हुए मूढ़ मनुष्य भगवान्‌का कैसे जान सकते हैं ? इन मायाके विकारोंसे छूटना हो तो सब कामनाओंको छोड़ यह विचारकर भी भगवान्‌का भजन करो कि श्रीहरिकी मायाके दोष-गुण हरिका भजन किये बिना नष्ट नहीं हो सकते ।

१९६०—जिसको भगवत्‌की प्राप्ति हो गयी है, वह पुरुष ईश्वर-भजनको छोड़कर दूसरोंका मार्गदर्शक या उपदेशक नहीं

बनता; क्योंकि उसकी दृष्टिमें एक प्रभुके सिवा कोई भी दूसरा रक्षक-शिक्षक या मार्गदर्शक है ही नहीं ।

१९६१—शरीरको छोड़नेके समय आत्माकी जिस वस्तुमें आसक्ति होती है, वह उसीमें प्रवेश करता है । उस समय यदि उसके हृदयमें भगवान्का प्रकाश न होकर जगत्का प्रकाश होता है, तो उसको अँधेरे जेलखानेमें जाना ही पड़ता है ।

१९६२—जब 'मैं' था, तब 'हरि' नहीं थे, अब 'हरि' हैं 'मैं' नहीं रहा । प्रेमकी गली बहुत ही सँकड़ी है, इसमें दो नहीं समा सकते ।

१९६३—मनुष्य सोता हो या बैठा हो, मृत्यु उसे खोजती ही रहती है और मौका पाते ही उसका नाश कर ढालती है । फिर तू निश्चिन्त कैसे बैठा है ?

१९६४—जिस मनुष्यने जन्म लेकर अपना और दूसरेका कल्याण किया और तत्त्वज्ञानको प्राप्त कर लिया उसीका जीवन सार्थक है ।

१९६५—जिसको 'मैं कौन हूँ' का पूरा ज्ञान हो गया तथा जो प्रभुके प्रेम-रसमें पग गया है वही सच्चा साधु है ।

१९६६—जो सत्यपर कायम है वह परमेश्वरकी ज्योतिके समीप जाता है और जो बुराई करता है वह उस ज्योतिका शत्रु है । अतएव बुराई छोड़ो और सचपर डटे रहो ।

१९६७—जो मनुष्य अपने क्रोधको अपने ही ऊपर झेल लेता है वह दूसरोंके क्रोधसे बच जाता है ।

१९६८—दुनिया और दुनियाकी सब चीजें नाश होनेवाली हैं, पता नहीं रातको ही सब नष्ट हो जायँ । इसलिये इनमें दिलको फँसाना कभी उचित नहीं ।

१९६९—जैसे जलके बिना नाव करोड़ यत्न करनेपर नहीं चल सकती, इसी प्रकार सहज सन्तोष बिना कभी शान्ति नहीं मिलती ।

१९७०—जो झूठ नहीं बोलता, परनिन्दा नहीं करता, सद्गुणोंको धारण करता है, सबसे निर्वैर है, सबमें समभावसे आत्माको देखता है और हरिके चरणोंका प्रेमी है वही साधु है ।

१९७१—देवतालोग जबतक उन्हें अमृत नहीं मिला, तबतक न तो अमूल्य रत्नोंको पाकर ही तृप्त हुए और न भयानक जहरसे ही डरे, समुद्र मथनेमें लगे ही रहे । इसी प्रकार धीर पुरुष अपने उद्देश्यको सिद्ध किये बिना विश्राम नहीं लेते ।

१९७२—सच्चा भक्त जगत्में रहता हुआ भी राग-द्वेष छोड़कर कर्तव्य-कर्म करता है और कर्मके फलस्वरूप जो नफा-नुकसान या सुख-दुःख मिलता है उसे ईश्वरकी गोदमें अर्पण कर देता है । वह तो रात-दिन केवल भक्तिके लिये ही ईश्वरसे प्रार्थना करता है । निष्काम कर्म इसीको कहते हैं ।

१९७३—जो मनुष्य संसारकी तरफ वासनाकी नजरसे देखा करता है, उसके अन्तःकरणमेंसे ईश्वर-प्रेम, दीनता और वैराग्यकी ज्योति निकल जाती है ।

१९७४—सपना सच्चा न होनेपर भी स्वप्नकी अवस्थामें जैसे स्वप्नसम्बन्धी दुःख नहीं मिटता, वैसे ही संसार सत्य न होनेपर

भी विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषका अज्ञान-अवस्थामें जन्म-मरण नहीं छूटता । अतएव अज्ञानके नाशका प्रयत्न करना चाहिये ।

१९७५—सद्गुणोंको पानेके लिये प्रयत्न करो, बाहरी आडम्बरोंसे क्या लाभ है ? बिना दूधकी गाय केवल गलेमें घंटा बाँधनेसे ही नहीं बिकती ।

१९७६—यदि भगवान् विष्णुका परमपद शीघ्र पाना चाहते हो तो शत्रु-मित्र, पुत्र-बन्धु आदिके बखेड़ोंसे चित्त हटाकर पर्वत्र समबुद्धि करो ।

१९७७—पुत्र और परिवार आदि विषयोंमें आसक्त मनुष्योंपर मृत्यु उसी प्रकार आक्रमण करती है; जैसे रातके समय बाढ़ आकर गाँवमें सोये हुए लोगोंको बहा ले जाती है । जब मृत्यु आ जाती है, तब उसे पुत्र, पिता या बन्धु कोई नहीं बचा सकते । शीलवान् पण्डित इस बातको समझकर अपने लिये निर्वाणका रास्ता साफ करते हैं ।

१९७८—जिसके सङ्गसे तुम्हारे अंदर अहंकार पैदा होता हो, उसका सङ्ग छोड़ दो और जो मनुष्य तुम्हारे दोषोंको दिखलावे उसकी खुशामद करो ।

१९७९—जो पुरुष वनमें या घरमें कहीं भी रहकर विश्वके स्वामी, विश्वके हितैषी, विश्वके धारण-पोषण करनेवाले परमात्मामें मन लगाता है, वही पुण्यात्मा है और वही कृतार्थ है ।

१९८०—दया बिना जीवन यथार्थ जीवन नहीं है, वह जीते ही मरण है । इसलिये अपने हृदयमें सब ओरसे दया-प्रेमका

ब्रह्माह बहने दो; इससे तुम्हें दिव्य आनन्द और शान्तिकी प्राप्ति होगी; क्योंकि ईश्वर ही प्रेम है और प्रेम ही ईश्वर है ।

१९८१—सदा स्मरण रखिये कि ईश्वरने हमें सुख और प्रसन्नता सदा दे रक्खी है और ये हमारी चेतनामें वैसे-वैसे ही विस्तार पायेंगी जैसे-जैसे हम इनको अपनायेंगे और इन्हें अपनेमें रहने देंगे ।

१९८२—श्रीरामके शरणागत हो जाओ, यही भयसागरकी नौका है, संसारसे तरनेका और कोई उपाय नहीं है ।

१९८३—जो मनुष्य ईश्वरीय वाणीकी मधुरता चाखे बिना ही इस लोकसे चले जाते हैं, वे बेचारे शान्ति और कल्याणसे वञ्चित ही रह जाते हैं । लोगोंके साथ सद्भावसे वर्तना, प्रभु पुरुषोत्तमकी सेवा करना, उनकी आज्ञामें रहना तथा प्रभुके ध्यान-स्मरणमें पवित्रतासे जीवन बिताना—यही हमारा यथार्थ कर्तव्य है ।

१९८४—झूठ बोलनेसे यज्ञका फल नष्ट हो जाता है, गर्व करनेसे तपका नाश होता है; ब्राह्मणकी निन्दा करनेसे आयु घटती है और किसीको दिया हुआ दान बतला देनेसे वह निष्फल हो जाता है ।

१९८५—जब शान्त और सत्त्वगुणी होकर चित्त आत्मामें लग जाता है, तब धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यकी प्राप्ति आप ही हो जाती है और जब वही शरीर तथा घर आदि मिथ्या पदार्थोंमें लगकर प्रबल रजोगुणी और विषयोंका अनुरागी बन जाता है, तब अधर्म, अज्ञान, विषयलोलुपता और अनीश्वरता छा जाती है ।

१९८६—जो परखीको बुरी दृष्टिसे देखता है, वह अपने सिर मानसिक व्यभिचारका पाप चढ़ाता है ।

१९८७—सत्सङ्गके बिना भगवान्का रहस्य सुननेको नहीं मिलता, उसके सुने बिना मोह दूर नहीं होता और मोहका नाश हुए बिना भगवान्के चरणोंमें दृढ़ अनुराग नहीं होता ।

१९८८—जो परमात्मा जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लय करते हैं, जो विश्वके ईश्वर हैं, सातों समुद्र जिनकी आज्ञामें रहते हुए पृथ्वीको डुबो नहीं देते उन वेद और उपनिषदोंद्वारा प्रतिपादित सब जगत्के साक्षी और सर्वज्ञ प्रभुको धन और जवानीमें मतवाले मूर्खलोग नहीं मानते ।

१९८९—खामीपनमें नम्रता, गुणोंमें प्रेम, हर्षमें सावधानता, मन्त्रमें गुप्तता, शास्त्रोंमें सुबुद्धि, धन होनेपर उदारता, साधुओंका सम्मान, दुष्टोंसे विमुखता, पापोंसे भय, दुःखमें कष्टसहिष्णुता—ये सब कल्याण चाहनेवाले महात्माओंके गुण हैं ।

१९९०—उपवास, अल्प भोजन, आजीविकाका नियम, रसत्याग, सर्दी-गर्मीका समभावसे सहन करना और स्थिर आसनसे रहना—यह छः प्रकारका बाह्य तप है और प्रायश्चित्त, ध्यान, सेवा, विनय, शरीरोत्सर्ग और स्वाध्याय—यह छः प्रकारका आभ्यन्तर तप है ।

१९९१—अगर कोई बोलना जाने तो बोली बड़ी ही अनमोल चीज है । पहले हृदयके तराजूपर तौलकर ही बोलनेके लिये मुँह खोलना चाहिये ।

१९९२—मनुष्य जितना ही मनकी वासनाओंका आदेश पालन करता है, उतना ही अधिक रोगी, दुखी और असन्तोषी बनता है ।

१९९३—जब तुम्हारी ईश्वरकी ओर अनन्य दृष्टि हो जायगी तब तुरंत ही प्रभुके साथ तुम्हारा मिलन होगा और जब तुम अपने तुच्छ स्वार्थों तथा सांसारिक पदार्थोंकी ओर देखोगे तब तुरंत ही भगवान्से तुम्हारा वियोग हो जायगा ।

१९९४—सच्चा मित्र वह है जो दर्पणके समान तुम्हारे दोषोंको यथार्थरूपसे तुम्हें दिखा देता है । जो तुम्हारे अवगुणोंको गुण बतलाता है वह तो खुशामदी है, मित्र नहीं ।

१९९५—उठो, आलस्य मत करो, सच्चे धर्मका आचरण करो, धर्मका आचरण करनेवाला ही लोक-परलोकमें सुखी रहता है । बुरे मार्गमें भूलकर भी मत जाओ ।

१९९६—प्रेम सदा ही सहनशील और मधुर है, प्रेम ईर्ष्या नहीं करता, आत्मश्लाघा नहीं करता, गर्व नहीं करता, दुष्ट आचरण नहीं करता, स्वार्थकी चेष्टा नहीं करता, शीघ्र क्रोध नहीं करता, बुरा नहीं मानता, अधर्ममें सुखी नहीं होता और सदा सत्यके साथ आनन्द करता है ।

१९९७—सारे छल-कापट छोड़कर श्रीरामसे प्रेम करो । अरे, जो स्वामी सारा शरीर देख चुका है, उससे छिपाना क्या है ?

१९९८—इस असार संसारके उलट-फेरके फेरमें न पड़कर सर्वत्र समताका पवित्र भाव हृदयमें रक्खो; सर्वभूत-प्राणियोंमें समता रखना ही भगवान्की सबसे बड़ी भक्ति है ।

१९९९—भगवान्की शरण होना और उनके दर्शनके लिये हृदयसे प्रार्थना करना साधकका परम कर्तव्य है ! जिसको

ईश्वरका साक्षात् हो चुका है, उसके लिये तो आशा या याचनाकी कोई वस्तु ही नहीं रह जाती ।

२०००—सांसारिक विषयोंमें उपरामता, ईश्वरकी आज्ञाका पालन और ईश्वरकी इच्छासे जो कुछ हो रहा है, उसीमें प्रसन्न रहना, यही सच्ची भक्तिके लक्षण है ।

२००१—हाथ और मनको काममें लगे रहने दे; परन्तु अपने हृदयको तो केवल भगवान्‌में ही रख, भगवान्‌ आत्मा हैं । आत्मामें निवास कर, आत्मामें कर्म कर, आत्मामें प्रार्थना कर, सब कुछ आत्मामें ही कर, तू भी आत्मा ही है, भगवान्‌की मूर्ति ही है ।

२००२—तुम अपनी प्रत्येक वासनाको जीत सकते हो, क्योंकि तुम उसी अनन्त परमात्माके ही अंश हो जिसकी शक्तिका सामना कोई नहीं कर सकता ।

२००३—दूसरे किसीमें भी ममता न रहकर एक भगवान्‌में जो अनन्य ममता होती है, उसीको प्रेम कहते हैं । इसी प्रेमको भीष्म, प्रह्लाद, उद्धव और नारद आदिने भक्ति बतलाया है ।

२००४—सद्भिचारोंके परायण होना ईश्वरकी कृपाका चिह्न है । भगवत्कृपा बिना किसीका परम कल्याण नहीं हो सकता ।

२००५—सत्कर्म करनेवालोंकी देवता भी सहायता करते हैं । और असत्-मार्गपर चलनेवालेका साथ सगा भाई भी छोड़ देता है ।

२००६—इस संसारमें दो ही अमूल्य रत्न हैं—एक भगवान्‌ और दूसरा संत । इन दोनोंका कोई मोल-तौल नहीं हो सकता ।

२००७—विरागकी प्राप्तिसे ही मनुष्य विरक्त होता है, विरक्त होनेपर ज्ञान होता है, तभी उसका जन्मक्षय होता है, तभी उसे

ब्रह्मचर्यका फल मिलता है, तब उसका कर्तव्य समाप्त हो जाता है; फिर उसे यहाँ आकर जन्म नहीं लेना पड़ता ।

२००८—विषय-सुखोंके त्यागद्वारा जिन्होंने भय और राग द्वेषको छोड़ दिया है ऐसे त्यागी पुरुष ही निर्ग्रन्थ कहलाते हैं ।

२००९—सूर्यकी किरणें सब जगह समान पड़नेपर भी जल और दर्पणमें प्रकाश अधिक दिखायी देता है, वैसे ही भगवान्‌का विकास सबके हृदयोंमें समानरूपसे होनेपर भी साधुके हृदयमें उसका विशेष प्रकाश होता है ।

२०१०—बैठे-बैठे अँधेरेमें क्या टटोल रहे हो ! प्रकाशकी खोज करो । वह प्रकाश है भगवत्-प्रेम, भगवत्-निष्ठा ।

२०११—एक बार अपने अंदर प्रेमकी आग जाने दो, फिर तुम्हारे जिस दोषके साथ उसका स्पर्श होगा वही दोष जल जायगा । तुम्हारा 'तू'पन जल जायगा, अहंकार नाश हो जायगा, 'मैं' 'मेरा' आदि भाव भस्म हो जायँगे और जब नया भाव सुलग उठेगा तब उसके तापमें प्रेमसे इतना महान् सुख मिलेगा कि उसके सामने विश्वका सारा सुख तुच्छ हो जायगा ।

२०१२—किसीके दोष न देखा करो, इससे आँख और मन दोनों मलिन होते हैं और जगत्‌में पापका बोझ बढ़ता है । इसलिये जो कुछ देखो अच्छाईकी ओर लक्ष्य रखो । अच्छाई ही सत्य और जीवन है । भगवान्‌को छोड़कर कोई भी पूर्ण नहीं है यह न भूलो ।

२०१३—दूसरेको सुखी देखकर प्रसन्न होना, दुखी देखकर उसकी सहायता करना, पर दुखी देखकर कभी प्रसन्न तो होना ही नहीं ।

२०१४—शोक, चिन्ता, भय, उद्वेग, मोह और क्रोध—इन ऊःसे जो मुक्त है वह सदा मुक्त है ।

२०१५—अहा ! वह कैसा सुखी होगा जो प्रभुको सदा समीप और अनुकूल देख पाता है ।

२०१६—सच्चा एकान्त कब हो ? जब भगवान्‌से शून्य जीवनसे परे हो जाओ ।

२०१७—जिनका मन कभी भी विकल नहीं होता और सदा ही प्रसन्न रहता है, वह सदा मुक्त ही है ।

२०१८—दृढ़ निश्चय करके भगवान्‌की खूब भक्ति करनी और शरीर छूटनेसे पहले ही भगवान्‌को प्राप्त करनेका प्रयत्न करना—यही जीवनका कर्तव्य है ।

२०१९—किसका संग किया जाय ? जिसमें 'तू-मैं' का भाव नहीं ।

२०२०—निन्द्य जीवनसे वैर बाँधकर ईश्वरके मित्र बनो । ईश्वरसे वैर बाँधकर निन्द्य जीवनसे प्रीति न करना ।

२०२१—एक छोटे-से जीवको भी अपनेसे नीचा मत समझो । बाहरी दुनियाको देखो भी तो ऊपर-ही-ऊपरसे । भीतरी आँखोंको तो उस प्रभुकी ओर ही लगाये रहो ।

२०२२—आगे-पीछेका विचार छोड़ो । जो हो गया है और जो होगा उसकी चिन्ता न करो । वर्तमानमें प्रभुके भजनमें लगे रहो ।

२०२३—दूसरेकी चीज लेनेकी कभी इच्छा नहीं करनी चाहिये । इस नियमके पालनसे चोरी नहीं होगी; घूस नहीं ली

जा सकेगी, किसीका न्याय्य हक नहीं छीना जायगा, मुफ्तमें कुछ भी नहीं लिया जायगा, परखीके प्रति विकारसे नहीं देखा जायगा और केवल अपना हक ही लिया जायगा ।

२०२४—हृदय कब सुखी होता है ? जब हृदयमें प्रभु आ विराजते हैं ।

२०२५—जिसपर ईश्वरकी कृपा होती है; सांसारिक सुखोंका उसीको अभाव रहता है ।

२०२६—संतोंका एक ही लक्ष्य होता है—भगवान् । किसी भी हालतमें उनका मन भगवान् से नहीं हटता ।

२०२७—अपने निर्वाहके लिये जो चिन्ता अथवा प्रपञ्च नहीं करता वही सच्चा विश्वासी है ।

२०२८—अहंभावको छोड़कर विपत्तिको भी सम्पत्ति मानना ही सच्चा सन्तोष है ।

२०२९—उच्च और पवित्र भावना एक ऐसी अद्भुत वस्तु है जो मनुष्यके मनमें आकर भी स्थिर नहीं रहती । उसका तो मनुष्यपर बहुत प्रेम है; किन्तु मनुष्यकी उसपर प्रीति हो तब न ।

२०३०—इस नाशवान् संसारमें जो आसक्त नहीं है वही सच्चा ऋषि है । तल्लीन होकर ईश्वरके गुण गाना, मत्त होकर प्रभुके संगीत सुनना और प्रभुकी अधीनता मानकर काम करना ही ऋषिका धर्म है ।

२०३१—जो ईश्वरमें लीन रहता है वही सच्चा संत है ।

२०३२—अपना भार दूसरेपर न लदना और बिना संकोच दान करना बड़ी दिलेरीका काम है ।

२०३३—ईश्वरमें निमग्न होना भावावेशमें अपनेपनका नाश करना है ।

२०३४—वास्तविक साक्षात्कारमें एक ईश्वरमें ही स्थिति होने-के कारण अहंता और ममताका नाश हो जाता है । ऐसी हालतमें तुम अपने शरीर और जीवको नहीं देख पाओगे ।

२०३५—सारी रात बिना नींदके प्रभुका स्मरण करनेवाला और दूसरे यात्रियोंके उठनेके पहले ही मंजिल तय कर लेनेवाला मनुष्य ही सच्चा प्रभु-भक्त और सत्पुरुष है ।

२०३६—जहाँ ईश्वरकी चर्चा होती है, वही स्वर्ग है ।

२०३७—जहाँ विषयोंकी चर्चा होती है, वही नरक है ।

२०३८—हे प्रभो ! तेरे सिवा मेरा कोई नहीं, तू मेरा है तो फिर सब कुछ मेरा है ।

२०३९—हे प्रभो ! मैं तो तुम्हींको चाहता हूँ और कुछ भी नहीं । तुम महान्-से-महान् हो, परम कृपालु हो; मुझे तुमसे शान्ति मिलेगी । मुझे अपनेसे जरा भी अलग न करना, मेरे सामने अपने सिवा और किसीको न आने देना ।

२०४०—ईश्वरकी कृपाके बिना मनुष्यके प्रयत्नसे कुछ भी नहीं मिल सकता ।

२०४१—ईश्वरके गुणोंका अपनेमें आरोप करनेवाला योगी अधम है ।

२०४२—अन्तःकरणमें एक भण्डार है, उस भण्डारमें एक रत्न है वह रत्न है प्रभु-प्रेम । इस रत्नको पानेवाला ही ऋषि है ।

२०४३—मनुष्य ज्यों-ज्यों संसारी परदोंसे ढकता जाता है, ज्यों-ही-त्यों वह प्रभुकी पूजा और साधना छोड़ता जाता है ।

२०४४—जो ईश्वरको जानता है वह ईश्वरको छोड़कर और किसी बातकी चर्चा ही नहीं करता ।

२०४५—संत वही है जिसे कोई भी विषय मलिन नहीं करता, बल्कि मलिनता भी जिसे छूकर पवित्र हो जाती है ।

२०४६—सत्य और प्रिय वाणी, ब्रह्मचर्य, मौन और रसत्याग—इन चारका सेवन करनेवालेमें सदा सिद्धियाँ बसती हैं ।

२०४७—पीड़ाकी आग तो उसीको सता सकती है जो ईश्वरको नहीं पहचानता । ईश्वरको जाननेवाला तो धधकती हुई आगको भी ठंडी और सुखदायक जान पाता है ।

२०४८—जो ईश्वरके नजदीक आ गया उसे किस बातकी कमी ? सभी पदार्थ और सारी सम्पत्ति उसीकी है; क्योंकि उसका वह परम प्रिय सखा सर्वव्यापी और सारी सम्पत्तिका स्वामी है ।

२०४९—त्याग तप है । त्यागके बिना न तेज है, न सत्कार है, न शान्ति है, न प्रसन्नता है, न आनन्द है और न मुक्ति ही है । त्याग करो—घरका नहीं, स्त्री-पुत्रोंका या धनका नहीं, त्याग करो क्रोधका, कड़वी वाणीका, विषयभोगका, मनकी विविध कामनाओंका, दूसरेको दुःख देनेवाले स्वभावका, आलस्यका, अभिमानका, आसक्तिका, ममताका और अहङ्कारका ।

२०५०—कोईके बन जाओ, स्वामी बना लो । स्वामी समर्थको बनाओ । सबसे समर्थ हैं—भगवान् । भगवान्‌के बन जाओ ।

भगवान्से विवाह कर लो । हाथ पकड़ लो । वे पकड़ा हुआ हाथ नहीं छोड़ते । दयालु हैं, समर्थ हैं, देखो, अगर तुम छोड़ भी दोगे तो याद रखो, भगवान्के वन जानेपर भगवान् कभी भूलते नहीं । छोड़ते नहीं ।

२०५१—या तो जैसे बाहरसे दिखाते हो वैसे ही भीतरसे बनो, नहीं तो जैसे भीतर हो वैसे ही बाहरसे दिखाओ ।

२०५२—प्रभुमें ही सब लोगोंकी स्थिति और गति देख सकनेपर ही पक्के पायेपर प्रभु-दर्शन हुए जानना ।

२०५३—धर्मकी भूख बादलके समान है । जहाँ वह बराबर जमी और चातककी-सी आतुरताकी गर्मी बढ़ी कि तुरंत ईश्वरकी कृपाका अमृत बरसने लगा ।

२०५४—तीन बातें ध्यान देने लायक हैं—(१) जब कभी किसी बुरे आदमीसे काम पड़ जाय तो उसके नीच स्वभावको अपने भले स्वभावसे ढक लेना, इससे स्वयं तुम्हें सन्तोष होगा, (२) जब कभी कोई तुम्हें दान दे तो पहले कृतज्ञ होना उस प्रभुका, उसके बाद उस उदारहृदय दाताको धन्यवाद देना, (३) जब कभी विपत्ति आ पड़े तो तुरंत विनीतभावसे उस विपत्तिको सहनेकी शक्तिके लिये प्रभुसे प्रार्थना करना ।

२०५५—जब-जब मनमें अशान्ति हो, तब-तब समझना चाहिये कि मैं भगवान्को भूल गया हूँ और इसलिये उस समय भगवान्का स्मरण करना चाहिये ।

२०५६—धर्म, सत्य और तप—यही जीवनकी सार सम्पत्ति है ।

२०५७—जो यह जानते हैं कि ईश्वर हमारा हर एक काम देखता है, वे ही बुरा काम करनेसे डर सकते हैं ।

२०५८—यहाँकी लक्ष्मी तो जीवके लिये भाररूप, चिन्ता, भय, क्लेश, श्रम, दुःख और मदको देनेवाली है और अन्तमें जन्म-मरणके चक्रमें डालनेवाली है ।

२०५९—शरीरका त्याग करनेसे भगवान्की प्राप्ति नहीं होती, उनकी प्राप्ति का एकमात्र सहज उपाय है निष्काम भजन—अहैतुकी भक्ति ।

२०६०—कोई भजन गाता हो, व्याख्यान देता हो, नाचता-कूदता हो और गाता-गवाता हो पर यदि वह सदाचारी न हो तो उसका त्याग कर देना चाहिये ।

२०६१—दुराचारी संक्रामक रोगकी अपेक्षा भी अधिक भयङ्कर है । दुराचारके समान कोई दूसरा संक्रामक रोग नहीं है ।

२०६२—विशुद्ध प्रभुप्रेम जगत्में एक दुर्लभ पदार्थ है । मनमेंसे कपटबुद्धिको दूर करनेका जब मैंने प्रबल प्रयत्न किया, तब उस प्रभुने अनेक सद्गुणोंके रूपमें आकर मेरे हृदयपर अधिकार कर लिया ।

२०६३—जो मनुष्य परस्त्रीके साथ या स्त्री-सम्बन्धी बातें करनेमें रस लेता हो, निर्लज्ज हो, ऊपरसे मीठी-मीठी बातें बनाने-वाला हो और रास्तेमें चलते-चलते खाता हो उसका संग कभी नहीं करना चाहिये । ऐसे लोग प्रायः हृदयके कपटी और दुष्ट भाव-वाले होते हैं ।

२०६४—संत ईश्वरपरायणताकी ऊँची अवस्थामें अपार सुख-शान्ति भोगते हैं। वे संसारसे दूर भागे हुए होते हैं। वे न किसी चीजके मालिक होते हैं और न किसी चीजके गुलाम ही।

२०६५—जो न तो दुनियाकी किसी चीजपर अपना बन्धन ही रखते और न खुद किसी बन्धनमें बँधते हैं, वे ही संत हैं।

२०६६—मच्चे संतका धर्म बाहरी आचार और पण्डिताई दिखानेमें नहीं है। उनका धर्म है पवित्र-चरित्र होकर ईश्वरका अनुसरण करना, जो बाहरी दिखावे और ज्ञानकी बातें रट लेनेसे नहीं मिल जाता।

२०६७—मुक्त रहना, वीर बनना और बाहरी सुख-वैभवसे अलग रहना, ईश्वरको पानेके लिये पशुवृत्तियोंकी गुलामी छोड़ देना—यह सच्चे संतका स्वभाव है। इस उत्तम स्वभावसे संसारकी मित्रताको छोड़कर ईश्वरसे स्नेह जोड़नेकी शक्ति आती है।

२०६८—जिनकी सदा ईश्वरकी ओर दृष्टि है और जो संसारसे विरक्त हैं, वही संत हैं।

२०६९—जो दुराचारियोंके अत्याचारोंसे कभी जरा भी व्यथित नहीं होते, वे ही महापुरुष हैं।

२०७०—परमेश्वरके नामपर लोगोंको अपनी ओर घसीटनेवाले धर्मध्वजी बहुत-से हैं। उनसे बचकर रहना।

२०७१—एक ईश्वरप्रेमीके लिये सभी स्थल मन्दिर हैं, सभी दिन पूजाके दिन हैं और सभी महीने व्रतके हैं। वह जहाँ रहता है, ईश्वरके साथ रहता है।

२०७२-‘उस’ के अस्तित्वका ज्ञान होते ही मैंने अपने अस्तित्वकी ओर देखा, तो वहाँ भी मुझे उसीका अस्तित्व दिखायी दिया ।

२०७३-प्रभु अपने प्रेमियोंको ऐसी जगह रखता है जहाँ साधारण लोग पहुँच ही नहीं पाते । जो लोग उस जगह पहुँच गये हैं, उनको जनसाधारण पहचान ही नहीं सकते कि वे प्रभु-प्रेमी हैं । जब कभी मैंने उस प्रभुके सौन्दर्यकी बात लोगोंसे कही तो उन्होंने मुझे पागल बतलाया ।

२०७४-जिस किसीने साधु पुरुषोंका सहवास किया है, वही ईश्वरको पा सका है ।

२०७५-हे प्रभो ! तुम जब मेरा सदा स्मरण रखते हो, तो मेरे आखिरी साँसतकके हर एक साँसके साथ तुम्हारा नाम रहे, मन भी सदा तुम्हारे स्मरणमें लगा रहे और तन और जीवन भी तुम्हारा अनुसरण करते रहें ।

२०७६-हे प्रभो ! तुमने मुझे अपने लिये ही रचा है और तुम्हारे लिये ही मैं जनमा हूँ । कृपाकर अपनी रची हुई किसी भी वस्तुके प्रति मेरे मनमें मोह न उत्पन्न होने देना ।

२०७७-मनुष्य ज्यों ही यह मानने लगता है कि मैं कुछ तो जानने लगा, तभीसे उसके ज्ञानके द्वार बंद हो जाते हैं ।

२०७८-पुरुषकी छिपी कामवासनामें यदि स्त्रीका देखना, सुनना, एकान्तमें मिलना और बातचीत करना चलता रहता है तो वह वासना बढ़कर प्रत्यक्ष कामनाका रूप धारण कर लेती है और फिर सहज ही मनुष्यका पतन हो जाता है ।

२०७९—स्त्रीसम्बन्धी साहित्य पढ़ना, स्त्रियोंके चित्र देखना और उनके नृत्य-गानके दृश्य देखना आदिसे दुर्वासनाकी सहज ही वृद्धि होती है ।

२०८०—स्त्रियोंके साथ बात करनेसे विकार बढ़ता है और स्पर्श करनेपर तो मानो वह पूरा बढ़ जाता है ।

२०८१—मानव-जीवन भोग भोगनेके लिये नहीं मिला है, इसके द्वारा मोक्ष अथवा भगवान्को पा लेनेमें ही इसकी सच्ची सार्थकता है ।

२०८२—साधुओंका समागम करनेसे प्रभुप्रेमरूपी सुन्दर बादल उमड़ेंगे और उनसे ईश्वर-अनुग्रहका खच्छ जल बरसेगा, किन्तु जब तुम उस प्रभुका ही समागम करने लग जाओगे तब तो उन बादलोंसे प्रेमके अमृतकी वर्षा होने लगेगी ।

२०८३—जो ईश्वरकी ओर जाता है उसे वह कुछ ऐसी वस्तु दे देता है जिससे उसका अपना सब कुछ चला जाता है और उसके बदलेमें भजन, भाव, उपासना, प्रार्थना आदि दैवी पदार्थ प्रभुकी ओरसे उसे मिलते रहते हैं ।

२०८४—खयं ईश्वर जिसका मार्गदर्शक है, उसका रास्ता अपने भरोसे ही चलनेवालेके रास्तेसे कहीं अधिक सुगम और छोटा है; क्योंकि ईश्वर अपने आश्रितको दिव्य दृष्टि प्रदान करता है, जिससे वह अपने सीधे रास्तेको सरलतासे देख लेता है ।

२०८५—रास्ते दो हैं—एक लंबा दूसरा छोटा । लंबा रास्ता भक्तके पाससे शुरू होकर भगवान्के पास जाता है और छोटा रास्ता भगवान्के पाससे शुरू होकर भक्तके पास आता है ।

२०८६—किये बिना मिलनेका नहीं । जैसा करता है वैसा मिलता है; पहले किया है, वैसा अब मिल रहा है और अब जैसा करोगे वैसा आगे मिलेगा ।

२०८७—कुटुम्ब-पालन और विषयभोग तो पशु-पक्षी भी करते हैं । फिर तुम मनुष्य होकर कुटुम्ब-पालन और विषय-भोगमें ही अपनी आयुको क्यों खो रहे हो ? देखो तो सही ।

२०८८—जब पूरी तरहसे अपना विनाश कर लोगे तभी तुम 'पूर्ण' बनोगे ।

२०८९—स्वर्ग और मृत्युलोकके सारे जीवनमें किये हुए धर्मनिष्ठानोंकी अपेक्षा पलभरका पवित्र प्रभु-समागम कहीं श्रेष्ठ है ।

२०९०—मनुष्यके विचार उसके इतने अधिक समीप हैं कि जितने समीप उसके हाथ, पैर और आँख, कान आदि अङ्ग भी नहीं हैं । मनके विचारोंका आत्माके साथ साक्षात् सम्बन्ध है, जब कि हाथ-पैर तथा आँख-कान आदि तो मनके सेवकमात्र हैं ।

२०९१—ईश्वरके प्रेमियोंके लिये है उसका स्नेह और पापियोंके लिये है उसकी दया ।

२०९२—जागो, उठो और लग जाओ । ऐसा अवसर फिर जल्दी नहीं आयेगा । ईश्वरका भजन करो । अपने पास कुछ हो तो दान करो । भूलेको मार्ग बताओ । दुखीकी सहायता करो तथा मन और इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर भगवान्में लगाओ ।

२०९३—माता-पिताकी आज्ञाका पालन करना, उनकी सेवा करना सन्तानका धर्म है । निष्काम भावसे या भगवद्बुद्धिसे हो तो इतने ही धर्मके पालनसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है ।

२०९४—पलभरका ईश्वरका सहवास हजारों वर्षोंकी साधनासे कहीं अधिक उत्तम है ।

२०९५—साधुओंका बाना तो बहुत पहन लेते हैं; परंतु ईश्वर तो चाहता है मनकी शुद्धि और व्यवहारकी सात्त्विकताका बाना ।

२०९६—ऐसे लोगोंकी ही सङ्गति करना जो ज्ञानाग्निसे शुद्ध होकर प्रभुके ममत्तरूपी अमृतसागरमें डूबे हैं ।

२०९७—मनुष्यका यह धर्म है कि वह बिना किसी भेदभावके दुःखमें पड़े हुए जीवकी यथाशक्ति सहायता करे—उसे कष्टसे बचावे और सुख पहुँचावे ।

२०९८—जो श्रोता प्रभुको पानेकी इच्छा नहीं रखता उससे बात मत करो, और जिस वक्ताको प्रभुके दर्शन नहीं हुए उसकी बात मत सुनो ।

२०९९—सच्चे प्रभु-प्रेमी बनकर जिस-किसी ओर देखोगे, वहाँ ईश्वर ही दिखायी देगा । कारण, ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है ही ।

२१००—यदि किसीके पास धन आये तो उसे तुरंत भगवत्प्रीत्यर्थ लोकसेवाके काममें लगाना आरम्भ कर देना चाहिये । धनकी सार्थकता और सफलता इसीमें है । भगवान्की प्रसन्नताके लिये व्यय किया हुआ धन भगवान्की प्रसन्नताका तथा भगवत्प्राप्तिका कारण होता है ।

२१०१—पूरी लगनसे काम करके उसे ईश्वरको समर्पित कर देनेवाला ही सच्चा साधु है ।

२१०२—प्रभु-प्रेमी ही प्रभुको पाता है और जो प्रभुको पा लेता है, वह अपने-आपको भूठ जाता है । उसका अहंभाव नष्ट हो जाता है ।

२१०३—पोथियोंके पण्डित धर्मका उपदेश दूसरोंको सुनानेमें ही लगे रहते हैं, किन्तु सच्चे साधु अपने-आपको सुनाते हैं और स्वयं उसपर आचरण करते हैं ।

२१०४—छोगोंके आगे रोनेकी अपेक्षा प्रभुके आगे रोओगे तो सच्चा लाभ होगा ।

२१०५—तुमने 'उसे' कहाँ देखा ?—जहाँ मैं खुद खो गया ! अपने आपको मैं नहीं देख पाया वहाँ ।

२१०६—मैं नहीं कहता कि काम मत करो । काम जरूर करो; किन्तु अपनी शक्ति और सम्पत्तिके सहारे नहीं, उस प्रभुकी शक्ति और सम्पत्तिके सहारे करो । वह करावे तभी करो ।

२१०७—साधु पुरुषो ! सावधान रहना । फकीरो ! फकीरी पोशाकसे ही तुम्हें उसके दर्शन नहीं हो सकेंगे । इन बाहरी साधनोंमें ही साधुता मान बैठनेसे तो हानि ही होगी ।

२१०८—यदि ईश्वरप्रीत्यर्थ ही सब कुछ किया जाय या अपने-को निमित्तमात्र मानकर अपने ऊपर कर्तृत्वका अभिमान न लदा जाय तो कोई भी कर्म मनुष्यको बाँध नहीं सकता ।

२१०९—क्या करनेसे जाग्रत् रहा जा सकता है ? हर एक आसके साथ यही समझो कि बस, यही अन्तिम आस है ।

२११०—आत्म-विसर्जन ही प्रेमका मूल मन्त्र है । प्रेमास्पद-का हित और सुख ही प्रेमीका परम सुख है । प्रेमास्पद उसके

प्रेमका तिरस्कार करे, उसे ठुकरा दे; पर प्रेमीके पास इन सब बातोंकी ओर देखनेके लिये चित्त ही नहीं है, उसका चित्त तो सहज ही अपने प्रेमास्पदमें लगा है ।

२१११—इस दुनियाके कँटीले झाड़के नीचे बैठकर प्रभुका ध्यान करना मुझे पसंद है; किन्तु खर्गके कल्पतरुके नीचे बैठकर ईश्वरको भूल जाना मुझे पसंद नहीं ।


२११२—ईश्वरके मार्गमें पहले व्याकुलता, तीव्र जिज्ञासा और पीछे निर्मलता, पश्चात्ताप, प्रभुकी महिमाका कीर्तन और परमात्म-दर्शन क्रमशः आते हैं ।

२११३—पवित्र बनो । ईश्वर स्वयं पवित्र है और वह पवित्रात्मापर ही अपने प्रेमकी वृष्टि करता है ।

२११४—सच्चा संत ईश्वरकी गोदमें हँसने, खेलनेवाला सुन्दर बालक है । ईश्वरकी गोदमें संत बिना किसी संकोचके खेलता-कूदता और गाता-बजाता रहता है ।

२११५—अपनी प्रिय-से-प्रिय वस्तुको अपने परम प्रिय सखा परमात्माके लिये न्यौछावर कर दो, यही प्रभु-प्रेमका लक्षण है ।

२११६—गहरे उतरकर तुम उसकी खोज नहीं करते इसीलिये तो उसे नहीं पा सकते ।

२११७—मनुष्यने प्रभुको देखा नहीं है इसीलिये वह विषय-
 पीछे दौड़ता फिरता है । उसने उसे देख लिया होता तो वह दूसरी चीजोंके पीछे क्यों दौड़ता फिरता ?

२११८—अपने मनमें सोचकर देखो, क्या वास्तवमें तुम्हें प्रभुको प्राप्त करनेकी अभिलाषा है ? यदि यथार्थ ही उन्हें पानेकी अभिलाषा है तो अवश्यमेव पूरी होगी ।

२११९—जिस प्रकार वर्षाऋतुके आनेपर जल बरसता है, बिजली चमकती है, मेघ गर्जना करते हैं, हवा जोरसे चलने लगती है, फूल खिल उठते हैं और पक्षी आनन्दमें डूबकर कूदने लगते हैं, उसी प्रकार परमात्माके दर्शन हो जानेपर आनन्दित होकर नेत्र जलवर्षा करने लगते हैं, ओठ मृदु हास्य करने लगते हैं, अन्तरकी कली खिल उठती है, आनन्दके झोंकेसे मस्तक हिलने लगता है, प्रतिक्षण उस प्रिय सखाके नामकी गर्जना होने लगती है और प्रेमकी मस्ती प्रभुके गुणगानमें सराबोर कर देती है ।

२१२०—जो मनुष्य अपनी बड़ाई सुनकर उसका विरोध करता हुआ भी मन-ही-मन प्रसन्न होता है, वह मूर्ख है और प्रायः दूसरोंके द्वारा ठगा जाता है ।

२१२१—प्रभुकी पूजा करना ही सच्चा कर्तव्य है । उसकी खोज करना ही सच्चा रास्ता है, उस परमात्माका दर्शन होना ही एक सच्ची कथा है ।

२१२२—जिस व्यक्तिका अहंकार जितना अधिक होता है, उसके दुःख भी उतने ही अधिक होते हैं । अहंकारकी वृद्धि एक प्रकारका पागलपन है ।

२१२३—प्रभु-स्मरणके लिये संसारको भूल जाओ और परलोककी बात भी मत सुनो ।

२१२४—सृष्टिमेंसे मनको खींचकर स्रष्टामें लगाना ही वैराग्य है । ईश्वरेतर सब चीजोंसे परे रहना ईश्वरके समीप जाना है ।

२१२५—सृष्टि और स्रष्टा तथा विधान और विधाताको एक समझनेमें ही पूर्णता है ।

२१२६—लोककल्याणको अपने कल्याणसे भी अधिक मानना ही सच्ची साधुता, महत्ता और उदारता है ।

२१२७—जिस लोक-कल्याणमें अभिमानका पुट है वह तो मोह है—त्याज्य है ।

२१२८—इस समय तुम्हें जो क्षण प्राप्त है वही तुम्हारा सबसे बढ़कर कीमती धन है । आध्यात्मिक जगत्में काल नामकी वस्तु ही नहीं है, इसीलिये भूत और भविष्य भी नहीं हैं ।

२१२९—जिस प्रकार स्नान आदिसे प्रतिदिन शरीर स्वच्छ करना जरूरी है उसी प्रकार मनको भी रोज स्वच्छ करना चाहिये । मनको धोनेके लिये भगवान्का भजन ही स्वच्छ सरोवर है ।

२१३०—ईश्वर भीतरकी छोटी-से-छोटी बातको भी देख रहा है—इस बातको एक क्षण भी न भूलो ।

२१३१—जिस साहित्यसे मनमें कामनाएँ जाग्रत् हों, मन विषयोंमें जाय, उसे मलिन साहित्य मानकर उसका त्याग करना चाहिये और जिससे कामनाएँ घटें, मनमें भगवान्के प्रति प्रीति उत्पन्न हो, मन निर्मल हो उसे शुद्ध साहित्य मानकर उसका अध्ययन करना चाहिये ।

२१३२—जिसके मनमें कामवासना प्रबल हो उसके लिये विवाह कर लेना ही उचित है । ऐसा करनेसे वह दूसरे पापों और

सङ्कटोंसे बच जाता है । मेरी भी नजरमें अगर दीवार और औरत एक-सी न लगती होती तो मैंने भी विवाह कर लिया होता ।

२१३३—जिन भगवान् ने तुम्हें शक्ति, साधन, सम्पत्ति दी है, वे प्राणिमात्रके हृदयमें बसते हैं; अभिमान छोड़कर उन्हें उनकी सेवामें खर्च करके भगवान् की सेवा करो ।

२१३४—भाग्यशाली कौन ? जो ईश्वरकी भक्ति करके उसके प्रेमका स्वाद चखकर इस लोक और परलोकमें शान्ति पाता है ।

२१३५—सावधान रहना ! जो आदमी तुम्हारे आगे दूसरोंकी निन्दा करता है, वह दूसरोंके आगे तुम्हारी निन्दा अवश्य करता होगा । ऐसे आदमीकी बातोंमें मत फँसना, नहीं तो बड़ी भारी विपत्तिका सामना करना होगा ।

२१३६—सदा प्रभुसे डरकर चलना और भूलकर भी किसीका अहित न चाहना, न करना ।

२१३७—ईश्वरपर विश्वास रखकर जो भी काम किया जाता है वही मङ्गलमय हो जाता है । विश्वास मुख्य वस्तु है ।

२१३८—जगत् में सत्य और प्रिय बोलनेवाले बहुत ही दुर्लभ हैं । कभी वे मिलें तो, उनके दर्शनसे, उनको प्रणाम करके, उनको संतुष्ट करके, उनका सत्सङ्ग करके पवित्र हो जाओ ।

२१३९—सदा सत्पुरुषोंकी सङ्गतिमें रहना ।

२१४०—सावधान ! परस्त्रीकी ओर कभी दृष्टिपात भी न करना ।

२१४१—दिवसका पहला और आखिरी प्रहर प्रभुके गुणगान, पठन और गुण-श्रवणहीमें बिताना ।

२१४२—ईश्वरोपासनाको परम कर्तव्य मानकर उसीमें लगे रहना ।

२१४३—साधनाके लिये निर्जनताका आश्रय बहुत ही उत्तम है ।

२१४४—सब बातोंको छोड़कर अपने एकमात्र परम मित्र परमात्मामें लीन होना ही योगकी ऊँची अवस्था है ।

२१४५—जो वस्तु—जो स्थिति तुम्हें ईश्वरसे दूर रखती है उससे तुम खयें दूर रहो, यही निवृत्ति है ।

२१४६—सांसारिक सम्पत्ति छोड़कर परमात्मामें समायी हुई सच्ची शान्ति पाना ही सच्चा वैराग्य है । अध्यात्मज्ञानकी प्राप्ति करना ही सच्चा विलास है ।

२१४७—मनमें जो कामनाएँ उठें, उन्हें मनमें ही लीन कर दो । सुखके लिये कभी कामना मत करो । कामना न करनेसे ही यथार्थ सुखका अनुभव होगा ।

२१४८—जिसकी दृष्टिमें जन्म और मरण समान हैं वही सच्चा साधु है ।

२१४९—लोगोंकी नजरमें जिसका दरजा ऊँचा हो गया है, समझ लो वह बहुत ही हल्का मनुष्य है ।

२१५०—जिस प्रभु-प्रेमीको दुनियाके लोग नाचीज, पागल और बेसमझ समझते हैं, वह सबसे ऊँचा है । दुनियावी तराजूसे यह तराजू न्यारा है ।

२१५१—जो मनुष्य विपत्तिमें भी अपने ऊपर ईश्वरकी कृपाको देख सकता है वह कभी मृत्युकण्टके अवीन नहीं हो सकता ।

२१५२—ईश्वरकी सेवासे शरीरमें और श्रद्धासे प्राणोंमें ज्योति प्रकट होती है ।

२१५३—जो कुछ भी तुम्हारा है उसका त्याग करो और 'वह' जैसी आज्ञा दे उसका पालन करो ।

२१५४—ईश्वरका भय मनका दीपक है । इस दीपकके प्रकाशसे मनुष्य अपने गुण-दोष भलीभाँति देख सकता है ।

२१५५—दूसरोंसे लेनेकी अपेक्षा देनेमें जिसे अधिक सुख नहीं मात्स्य होता वह सच्चा संत नहीं हो सकता ।

२१५६—दुनियामें घुसना बहुत आसान है, पर उनमेंसे निकलना उतना ही मुश्किल है ।

२१५७—ईश्वरके प्रति नम्र होना, उसकी आज्ञाके मुताबिक चलना, उसकी प्रत्येक इच्छाके आगे सिर झुकाना—इसीका नाम ईश्वरके प्रति विनय दिखाना है ।

२१५८—प्रभुपर निर्भर और उसके अधीन रहनेवाला वास्तव में वही है जिसने ईश्वरका दृढ़ आश्रय लिया है और जो किसी भी बातका उसे दोष नहीं देता ।

२१५९—एक ईश्वरकी प्राप्तिके लिये ही जिसके मनमें वैराग्य उपजा हो वही सच्चा वैरागी है, स्वर्गके लोभसे जो वैरागी बना हो वह तो असली वैरागी नहीं ।

२१६०—अपने पास बहुत-से नौकर-चाकर और भोगोंके सामान देखकर एक अज्ञानी ही फूल नहीं समाता ।

२१६१—जिसने अपना अभिमानका बोझ हल्का कर लिया

है, वही पार उतर सकता है । जिसने बोझ बढ़ा लिया है, वह तो डूबेगा ही ।

२१६२—जो मनुष्य संसारको नाशवान् और भगवान्‌को सदाका साथी समझकर चलता है, वही उत्तम गति पाता है । जो नाशवान् चीजोंका मोह छोड़कर, संसारका भार प्रभुपर छोड़कर भाररहित हो जाता है वह सहज ही संसार-सागरसे तर जाता है ।

२१६३—इस दुनियामें इन्द्रियोंको बाँधनेके लिये जैसी मजबूत साँकल चाहिये वैसी मजबूत साँकल पशुओंको बाँधनेके लिये भी नहीं चाहिये ।

२१६४—तुम्हारे पूर्वज ईश्वरकी आज्ञाओंका पालन करते हुए चलते थे । रातको वे उसका चिन्तन करते थे और दिनमें उसीके अनुसार वर्ताव करते थे; परन्तु तुमने वैसा करना छोड़ ही नहीं दिया, उलटे ईश्वरकी आज्ञाओंके उलटे-सुलटे अर्थ लगाकर तुम संसारमें आसक्ति बढ़ानेवाले लेख तैयार कर रहे हो ।

२१६५—तुम्हारा चिन्तन तुम्हारा दर्पण है । कारण, तुम्हारे शुभाशुभका हाल वह बता देगा ।

२१६६—जिसकी दृष्टि वशमें नहीं, उसे कुमार्गपर जाना पड़ता है ।

२१६७—जिसने वासनाओंको पैरोंतले कुचल दिया है, वही मुक्त है ।

२१६८—जबतक हृदय सङ्केत नहीं करता, ज्ञानी मौन रहते हैं । उनकी जीभसे वही बात निकलती है जो उनके हृदयमें होती है ।

२१६९—इस दुनियामें लोगोंकी दोस्ती बाहरसे देखनेमें सुन्दर पर भीतरसे जहरीली होती है ।

२१७०—इस मायावी संसारसे सदा सचेत रहना, यह बड़े-बड़े पण्डितोंके मनको भी वशमें कर लेता है ।

२१७१—जिन्हें ईश्वरकी स्तुति और ईश्वरका स्मरण करनेके बदले लोगोंको शास्त्रवचन सुनाना ही अच्छा लगता है, प्रायः उन सबका ज्ञान बाहरी—नकली है, उनका जीवन सारहीन है ।

२१७२—अपनेसे छोटे और अधीनको सुधारनेके लिये, भूल हो तो उसे मीठे वचनोंसे एकान्तमें उसकी भूल समझा दो, किन्तु तिरस्कार-तकरार न करो ।

२१७३—विपत्तिको सह लेनेमें अचरज नहीं है, अचरज है वैसी हालतमें भी शान्त और आनन्दमग्न रहनेमें । और यही ईश्वर-विश्वासका लक्षण है ।

२१७४—ईश्वरसे डरकर जो काम किया जाता है वह सुधरता है, और जो काम बिना उसके डरके किया जाता है वह बिगड़ता है ।

२१७५—जबतक लोक और लौकिक पदार्थोंमें आसक्ति रहेगी, तबतक ईश्वरमें सच्ची आसक्ति न हो सकेगी ।

२१७६—जिसकी जीभ सत्य और हितकर वाणी बोलती है, वही वास्तविक वक्ता है ।

२१७७—प्रभु-प्रेम मनुष्यसे प्रभु-प्रेमकी बातें करवाता है । प्रभुकी लज्जा उसे असत् बोलनेमें मौन रखती है और प्रभुका भय उसे पाप करनेसे बचाता है ।

२१७८—दानादि सत्कर्मोंको करते समय होनेवाली अपनी प्रशंसाकी ओर कान भी न दो । वह प्रशंसा तुम्हारी नहीं, उस ईश्वरकी महिमा है ।

२१७९—पहले प्रभुके दास बनो और जबतक वैसे न बन पाओ, 'अहं ब्रह्मास्मि' 'मैं वही हूँ' ऐसा मत कहो । नहीं तो, घोर नरककी यातना भोगनी होगी ।

२१८०—जो मनुष्य सांसारिक विषयों तथा विषयी लोगोंके संसर्गसे दूर रहता है और साधुजनोंका ही सङ्ग करता है, वही सच्चा प्रभुप्रेमी है; कारण, भगवत्परायण साधुजनोंसे प्रीति करना और ईश्वरसे प्रीति करना एक ही समान है ।

२१८१—सच्चे प्रभु-प्रेमीके दो लक्षण हैं—स्तुति-निन्दामें समभाव रहना और भगवान्से कोई भी लौकिक कामना न रखना ।

२१८२—संयोगका वियोग एक दिन अवश्य होना है । सञ्चित-का क्षय अनिवार्य है । जो इस प्रकार समझ लेते हैं, वे विज्ञ पुरुष यहाँकी लाभ-हानिमें हर्ष और शोकके बश नहीं होते ।

२१८३—विश्वासके चार लक्षण हैं—सब चीजोंमें ईश्वरको देखना, सारे काम ईश्वरकी ओर नजर रखकर ही करना, हर एक दुःख-सुखमें उसका हाथ देखना और हर हालतमें हाथ पसारना तो उस सर्वशक्तिमान्के आगे ही ।

२१८४—मनुष्यको, जहाँतक बने, अपने दोष देखने चाहिये, उनके लिये मन-ही-मन अपनी निन्दा करनी चाहिये और अपनेको निर्दोष बनानेका सतत प्रयत्न करना चाहिये ।

२१८५—जो मनुष्य दुःखमें प्रभुका आशीर्वाद देखता है, वह महान् है ।

२१८६—जो मनुष्य सुखमें प्रभुका चिन्तन करता है, वह भाग्यवान् है ।

२१८७—ईश्वरसे डरनेवालेका मन ईश्वरको नहीं छोड़ता, उसके मनमें प्रभु-प्रेम दृढ़ रहता है और उसकी बुद्धि पूर्णताको प्राप्त होती है ।

२१८८—बड़प्पनको खोजनेवाला तो हल्काईको ही पाता है ।

२१८९—इस संसारमें एक ईश्वरका भय दूसरे सब भयोंसे मुक्त करता है ।

२१९०—अचरजकी बात है ! तेरा प्यारा मित्र तेरे समीप भी है और अनुकूल भी है, फिर भी तेरी यह हालत ?

२१९१—दूसरोंके दोष-दर्शन, परनिन्दा और वृद्धों तथा सत्पुरुषोंका अपमान करनेमें मनुष्यका अभिमान ही प्रधान कारण है ।

२१९२—ईश्वरकी कठोर-से-कठोर आज्ञाका पालन करनेमें भी प्रसन्न होना सीखो । ईश्वरका आदेश सुनने-समझनेकी इच्छा हो तो पहले अभिमान छोड़कर आदेशको सुनकर उसके पालनमें जुट जाओ । भयानक विपत्तिमें भी हरेक साँसके साथ प्रभुके प्रेमको बनाये रखो ।

२१९३—मनुष्य कब ईश्वरार्पण हो सकता है ? जब कि वह अपने-आपको, अपने हरेक कामको बिल्कुल भूल जाय, सर्वभावसे उसका आसरा ले ले और उसके सिवा किसी दूसरेकी न आशा रखे, न किसीसे सम्बन्ध ही रखे ।

२१९४—जबतक मैं-मेरा है, तबतक तुम उलटी ही राहपर हो । जहाँ निःस्वार्थता और सच्ची श्रद्धा है, वहीं धर्मका बल है ।

२१९५—जहाँ उपदेश अधिक होता है, वहाँ गम्भीरता कम होती है, जहाँ गम्भीरता अधिक होती है, वहाँ उपदेश कम होता है ।

२१९६—भगवान् ने तुम्हारे लिये जो रच रक्खा है, उसका विरोध करना तुम्हारे ओछे स्वभावका परिचयमात्र है ।

२१९७—जगत् की तमाम चीजोंके रचनेवाले भगवान् को प्राप्त करना किसी भी चीजको प्राप्त करनेकी अपेक्षा सहज है तो भी तुम उससे दुनियावी चीज ही चाहते हो, यह कैसी बात है ?

२१९८—जो मनुष्य स्वर्गादि सुखोंके लिये ईश्वरकी पूजा करता है, वह तो अपनी ही पूजा करता है और जो ईश्वरके लिये ईश्वरकी सेवा करता है, वह भी ईश्वरको नहीं जानता; क्योंकि ईश्वरको न तो तुम्हारेद्वारा सेवा करानेकी जरूरत है, न चाह ही है । जो ईश्वरको प्रेमके लिये पूजता है, जिससे पूजे बिना रहा नहीं जाता, वही यथार्थ पूजता है ।

२१९९—धन, अधिकार और उच्च स्थिति आदिका क्या मूल्य है ? प्रथम तो वे खल्प और अपूर्ण हैं, दूसरे, जितने जो कुछ हैं वे भी अनित्य ही हैं । आज हैं कल नहीं । उनपर गर्व करना और उनके कारण अपनेको ऊँचा तथा दूसरोंको नीचा समझना तो वास्तवमें मूर्खता ही है ।

२२००—जो मनुष्य हर हालतमें अपनेको और तमाम वस्तु-स्थितियोंको भगवान् में ही देखता है, वही, तमाम वस्तुओंकी इच्छाका त्याग कर सकता है ।

२२०१—अपनी दुनियावी स्थिति और शक्तिपरसे विश्वास उठ जाना भी प्रभुकी महत्त्वपूर्ण सेवा है; क्योंकि ऐसा होनेपर ही मनुष्य ईश्वरसेवाकी योग्यता प्राप्त करता है ।

२२०२—जो भी भक्त या साधु अपने ज्ञान-वैराग्यके लिये मनमें गर्व रखता है, वह तो ज्ञान-वैराग्यका उपहास ही कराता है; तुम अपने किसी भी वैराग्य या निवृत्तिके लिये क्या गर्व करते हो ? ईश्वरके निकट तुम्हारा यह सब कुछ मच्छरकी पाँखके बराबर है ।

२२०३—जिस मनुष्यका मन प्रभुचिन्तनकी ज्योतिसे प्रकाशित है और जिसमें सदा प्रभुका ही विश्वास भरा है, वही सच्चा ज्ञानी है ।

२२०४—इन चार बातोंका पालन करोगे तो तुमसे शुद्ध साधना हो सकेगी—१—भूखसे कम खाना, २—लोकप्रतिष्ठाका त्याग, ३—निर्वनताका स्वीकार और ४—ईश्वरकी इच्छामें सन्तोष ।

२२०५—भोजन अपवित्र होता है तो एकान्तमें भी उत्तम साधना नहीं हो सकती और ईश्वरके अर्पण किये बिना कोई भी वस्तु पवित्र हो नहीं सकती ।

२२०६—अन्यायसे प्राप्त की हुई वस्तुका उपभोग करनेवालेके तमाम अङ्गोंमें पाप लिपट जाता है । अपनी इच्छा न होनेपर भी ऐसा आदमी पापमें ही डूबता जाता है । जो मनुष्य न्यायपूर्वक मिली हुई पवित्र वस्तुका उपभोग करता है, उसके तमाम अङ्ग साधनाके अनुकूल ही बर्तते हैं ।

२२०७—जो सच्ची निवृत्ति चाहता है, उसे चाहिये कि वह तमाम पापोंको और उल्टी समझको छोड़ दे ।

२२०८—तुम जो कुछ भी करो अगर वह ईश्वरकी आज्ञाके अनुसार नहीं है तो तुमको दुःख ही मिलेगा ।

२२०९—भक्त जबतक परमात्मासे प्रेम नहीं करता और मृत्युको याद नहीं रखता, तबतक उससे सर्वाङ्गसुन्दर तप नहीं हो सकता ।

२२१०—जीवनके कार्य जबतक पवित्रतासे न हों, तबतक लोगोंका विश्वास नहीं जमता । सच्ची निवृत्ति तो प्रभुके विशुद्ध प्रेमसे ही उपजती है और विशुद्ध प्रेमकी पूर्णता तभी होती है जब प्रभुके दर्शन होते हैं ।

२२११—जिनमें प्रभुका विशुद्ध प्रेम नहीं है वे लोग प्रपञ्चको दोष न समझकर गुण ही मानते हैं ?

२२१२—जो मनुष्य समझ-बूझकर अपनी इच्छासे परमात्माकी पूजा नहीं करता, उसको तो बाध्य होकर मनुष्योंकी पूजा ही तो करनी पड़ेगी ।

२२१३—जो भगवान्को छोड़कर दूसरे किसी पदार्थमें सुख मानता है, उसका तो मन ही दूषित है । उसके हृदयमें प्रभु-विश्वास और पवित्रताकी ज्योतिका प्रकट होना कठिन है ।

२२१४—जो मनुष्य भगवान्को छोड़कर दूसरी बातोंमें फँसा रहता है, वह अपने ही हाथों अपना गला काटता है ।

२२१५—जो मनुष्य अपने सब पदार्थ मान-प्रतिष्ठा और लोक-परलोक सबकी अपेक्षा भगवान्को ही बड़ा समझकर भगवान्में ही प्रेम रखता है, उसीके हृदयमें सदाके लिये आध्यात्मिक सूर्य उगता है ।

२२१६—तुम बाहरसे निर्धन दीखनेवाले सच्चे साधुओंका अभिमानवश अपमान करते हो, पर निश्चय समझना कि सर्वोत्तम सम्पत्तिवान् वे ही हैं ।

२२१७—छः चीजोंका आश्रय लेना चाहिये—(१) ईश्वरीय ग्रन्थका अवलम्बन, (२) ऋषि-मुनियोंद्वारा प्रचार की हुई ईश्वरकी आज्ञाओंका पालन, (३) खान-पानकी पवित्रता, (४) दुःख देनेवाले और निन्दा करनेवालेको दुःख न देना और निन्दा न करना, (५) निषिद्ध कामोंसे दूर रहना और (६) जो कुछ देनेका विचार हो तुरंत दे डालना ।

२२१८—धर्मके मूल तीन हैं—(१) विचार और आचरणमें महात्माओंके मार्गपर चलना, (२) खान-पानको पवित्र रखना और (३) सत्कार्यमें ही स्थिति और प्रीति रखना ।

२२१९—दो चीजें मनुष्यका विनाश करनेवाली हैं—(१) मान-बड़ाईके लिये दौड़ना और (२) निर्धनतासे डरना ।

२२२०—इस जगत्में प्रभुके समान कोई भी सच्चा सहायक नहीं है और प्रभुके भेजे हुए महापुरुषोंके समान अच्छे मार्गका कोई दिखानेवाला नहीं है ।

२२२१—मनको अच्छे मार्गपर चढ़ानेके लिये चार सीढ़ियाँ हैं—(१) सत्यका स्वीकार, (२) संसारसे उपरामता, (३) आचरणकी पवित्रता तथा उच्चता और (४) पापोंके लिये भगवान्से क्षमा-प्रार्थना ।

२२२२—जिनका मन मलिनतासे मुक्त और सद्विचारोंसे युक्त है, ईश्वरकी समीपतासे जिसके मायाके बन्धन कट गये हैं और जिसकी नजरमें धूल और सोना समान है, वही सच्चा ज्ञानी है ।

२२२३—अल्प आहारमें, चित्तकी शान्तिमें और लोकसंसर्गके त्यागमें साधुता भरी है ।

२२२४—विशेष जखुरतकी भी कोई चीज तुम्हारे पास न हो तो यह विश्वास करो कि तुम्हारे भलेके लिये ही प्रभुने ऐसा किया है । इसीका नाम प्रभुपर निर्भरता है ।

२२२५—सारे सम्बन्धों और चिन्तनोंसे रहित होकर ईश्वरसे ही सम्बन्ध जोड़ना और उन्हींका चिन्तन करना, इसीका नाम आन्तरिक निर्भरता है ।

२२२६—आत्मसमर्पण किये बिना प्रभुपर निर्भर नहीं हुआ जा सकता और स्वार्थ छोड़े बिना आत्मसमर्पण नहीं होता ।

२२२७—प्रभुपर निर्भर रहनेके तीन लक्षण हैं—(१) दूसरेसे कुछ भी न माँगना, (२) मिले तो भी न लेना और (३) लेना ही पड़े तो बाँट देना ।

२२२८—प्रभुपर निर्भर करनेवालेको तीन चीजें मिलती हैं—(१) प्रभुके प्रति पूर्ण श्रद्धा, (२) अध्यात्मविद्याका प्रकाश और (३) प्रभुका साक्षात्कार ।

२२२९—ईश्वरने तुमको जो कुछ देना कबूल कर रक्खा है उसमें जरा भी सन्देह न रखना, इसीका नाम निर्भरता है ।

२२३०—जिस चीजकी जखुरत हो उस चीजके लिये उसीसे जान-पहचान करनी पड़ती है कि जिसके पास वह हो । तुमको मोक्ष और सुख चाहिये तो तुम्हें ईश्वरसे ही परिचय करना होगा । क्योंकि ये उन्हींके पास भरपूर हैं, संसारके भाई-बन्धुओंके पास नहीं ।

२२३१—जैसे सत्पुरुष बड़े-बूढ़ोंका अभिवादन करके सुखी होते हैं, वैसे ही मूर्खलोग सत्पुरुषोंकी निन्दा करके प्रसन्न होते हैं ।

२२३२—अपकार करनेवालेका बदला अपकारसे न देकर उपकारसे देना और उसके लिये प्रभुसे क्षमा-याचना करना यही साधुता है ।

२२३३—जिसको भगवान्का प्रेम प्राप्त है वह मनुष्य भयानक-से-भयानक रोगमें, बड़ी-से-बड़ी विपत्तिमें और दारुण अन्न-कष्टमें भी धीरज और कृतज्ञताको अटल रखता है ।

२२३४—चार बातोंमें मनुष्यका कल्याण है—(१) वाणीके संयममें, (२) अल्प निद्रामें, (३) अल्प आहारमें, (४) एकान्तके भगवत्स्मरणमें ।

२२३५—मनुष्यके सङ्गका क्या भरोसा ? वह मर जाय, तो फिर उसका सङ्ग कैसे मिलेगा ? तब भगवान्का ही सङ्ग करना होगा । इसलिये पहलेसे ही भगवान्का सङ्ग क्यों न किया जाय ?

२२३६—जिसका हृदय भगवान्के प्रेमसे कोमल हो गया है, उसके पास पापरूपी असुर नहीं आ सकता ।

२२३७—जीवनमें पाँच बातें अमूल्य रत्न हैं—(१) ऐसी फकीरी जो अपार आन्तरिक सम्पत्तिका दर्शन करा दे, (२) ऐसा त्याग जो अखण्ड तृप्तिके दर्शन करा दे, (३) ऐसा दुःख जो नित्य प्रसन्नताके दर्शन करा दे, (४) ऐसी वीरता जो शत्रुके प्रति भी मित्रताके दर्शन करा दे और (५) ऐसी साधना तथा ऐसा भगवान्का स्मरण जो भगवान्के दर्शन करा दे ।

२२३८—प्रभु और जीवके बीचमें अभिमानके समान अन्तराय दूसरा नहीं है ।

२२३९—जो मनुष्य अभिमानी होता है, वह प्रभु-भक्त नहीं हो सकता । जो ईश्वरसे डरकर नहीं चलता, वह विश्वासपात्र नहीं बन सकता और जो विश्वासपात्र नहीं बनता, वह प्रभुके अटूट भण्डारकी चाबियोंको नहीं पा सकता ।

२२४०—प्रभुकी प्राप्तिके लिये दीनता और हीनताके समान सहज मार्ग नहीं है ।

२२४१—जो मनुष्य दूसरोंके हितके लिये लापरवाह और स्वार्थसाधनमें तत्पर होता है, उसमेंसे सत्यकी सुगन्ध नहीं निकलती, झूठकी ही दुर्गन्ध निकलती है ।

२२४२—संसारमें रहकर भगवान्की आज्ञाका पालन करना संसारमें ही स्वर्गकी प्राप्तिके समान है; इस स्वर्गकी विशेषता है कि इसमें कोई विपत्ति नामकी चीज नहीं रहती ।

२२४३—त्रीशताकी परख तीन बातोंमें होती है—(१) असत्यका आचरण न करके जीवन-निर्वाह करना, (२) जखूरी चीज न मिले तब भी प्रभुकी प्रशंसा करना और (३) बिना माँगे दान देना ।

२२४४—ईश्वरके आश्रित मनुष्योंके तीन लक्षण होते हैं—
(१) उसके विचारोंका प्रवाह ईश्वरकी ओर ही बहता है,
(२) ईश्वरमें ही उसकी स्थिति होती है और (३) ईश्वरकी प्रीतिके लिये ही उसके सारे कार्य होते हैं ।

२२४५—जिस मनुष्यको अधिकार और मालिकी प्यारी होती है, वह भगवान्‌को नहीं पा सकता।

२२४६—मैं एक ऐसा मार्ग जानता हूँ कि जिसपर चलनेसे जल्दी-से-जल्दी ईश्वरके पास पहुँचा जा सकता है। वह मार्ग है किसीसे कुछ भी न चाहना और अपने पास ऐसा कुछ भी न रखना जिसके लिये दूसरेके मनमें चाह हो।

२२४७—अपनी जीभको निन्दा-स्तुतिसे सदा दूर रखो। हे युवको ! जबतक तुम बूढ़े और कमजोर नहीं हो जाते तभीतक अपने जीवनके मुख्य कामको पूरा कर लो। बुढ़ापेमें यह काम नहीं होगा।

२२४८—धनवान् पड़ोसी और राजदरबारके पण्डितोंसे दूर रहना। नीचे लिखे परिमाणसे अधिक मिले तो उसको अनावश्यक और बोझरूप मानना चाहिये—(१) प्राण रहे इतना अन्न, (२) प्यास मिटे इतना जल, (३) लाज बचे इतना वस्त्र, (४) रहनेभरका घर और (५) उपयोगी हो इतना-सा ही लौकिक ज्ञान।

२२४९—कहनीके समान रहनी न हो, इसीका नाम ठगी है।

२२५०—अपने दोषोंको न देखना और न सुधारना, इसीका नाम धर्मान्धता है।

२२५१—जिस शक्तिसे इन्द्रिय और मन वशमें किये जा सकें, उसीका नाम शक्ति है।

२२५२—जो मनुष्य सम्पत्तिका सदुपयोग नहीं कर सकता, उसकी सम्पत्ति इतनी जल्दी नष्ट होगी कि पता ही नहीं लगेगा।

२२५३—मन तीन प्रकारके होते हैं—(१) पहाड़-जैसा अडिग, जिसको कोई नहीं हिला सकता, (२) पेड़-जैसा जो बाहरके संयोगरूपी हिलोरोसे हिला करता है और (३) तिनके-जैसा जिसको बाह्य संयोगरूपी हवा कहीं-का-कहीं फेंक देती है ।

२२५४—जिस अन्तःकरणमें संसारी लालसाएँ भरी होती हैं उसमें ये पाँच बातें नहीं रह सकतीं—(१) ईश्वरका भय, (२) ईश्वरकी आशा, (३) ईश्वरपर प्रेम, (४) ईश्वरसे लज्जा और (५) ईश्वरके साथ मित्रता ।

२२५५—किसीके आत्मज्ञानका माप वह ईश्वरके समीप कितना पहुँच गया है, इसीसे हो सकता है ।

२२५६—जो मनुष्य सत्यके लिये धीरजको बचा सकता है, वही आगे बढ़ता है ।

२२५७—भजन-पूजन यदि विशुद्ध निष्काम भावसे भगवान्‌के लिये ही किया जाय तो उससे भगवान्‌की प्राप्ति होती है ।

२२५८—प्रभुप्रेमी मनुष्य जब अपने शरीरके प्रति स्नेह-रहित हो जाता है, तभी उसकी साधना और उसका जीवन सुखरूप बनता है ।

२२५९—जबतक एक गाँवको नहीं छोड़ा जा सकता तबतक दूसरे गाँवमें नहीं पहुँचा जा सकता, इसी प्रकार जबतक मनुष्य संसारका सम्बन्ध नहीं छोड़ सकता, तबतक वह प्रभुके स्थानमें नहीं पहुँच सकता ।

२२६०—जो चीज अपनी नहीं है, उसको जो अपनी मानता है, वह प्रभुकी दृष्टिमें नीचे पड़ता है ।

२२६१—लोगोंमें जिसका परिचय जितना ही अधिक होता है, उसकी सत्यतामें उतनी ही न्यूनता होती है ।

२२६२—केवल अनुमान और शङ्काओंपर निर्भर करके ही किसी उत्तम मनुष्यसे दूर नहीं हटना चाहिये ।

२२६३—जिस मनुष्यको भगवान्‌का प्रेम प्राप्त करना हो; उसे अपना हरेक व्यवहार सर्वज्ञ प्रभुसे डरकर करना चाहिये ।

२२६४—यदि तुम सरलताको वाहन और सत्यको शस्त्र बनाकर चलो तो निश्चय समझना कि भगवान् भी तुम्हारी इच्छा करेंगे ।

२२६५—न तो ईश्वरसे स्वर्गकी कामना करो और न नरकसे ही बचानेकी याचना करो । शरणागतिका यही आदर्श है ।

२२६६—संसारमें ईश्वरके सिवा और जरा भी सार वस्तु नहीं है । जबतक तुम्हारे हृदयमें यह बात घँस न जाती तबतक सच्चा वैराग्य नहीं मिल सकता ।

२२६७—जो वस्तु प्रभुसे दूर रखे, उसके छोड़ देनेका नाम ही वैराग्य है । चाहे वह कितनी ही मूल्यवान् और आवश्यक हो ।

२२६८—फकीरीकी शोभा तीन बातोंमें है—(१) हृदयकी विशालता, (२) अन्तःकरणकी शान्ति और (३) निष्पापबुद्धि ।

२२६९—धनके अभिमानी मनुष्यका तीन बातोंसे जख्म सम्बन्ध होता है—(१) क्लेश, (२) अशुभ विचार और (३) पापकी बुद्धि ।

२२७०—बुद्धिमान् कौन है ? जो संसारसे प्रेम हटाकर भगवान्‌में प्रेम करे । धनवान् कौन है ? प्रभु जो दे, उसीमें सन्तोष करे ।

चतुर कौन है ? जिसको संसारके भोग न फँसा सकें । त्यागी कौन है ? जिसके मनमें संसारकी कोई कामना नहीं । कृपण कौन है ? जो ईश्वरके दिये हुए धनका उचित दान करनेमें संकोच करे ।

२२७१—चार मनुष्य प्रभुको विशेष प्रिय होते हैं—(१) अहङ्काररहित विद्वान्, (२) तत्त्व जाननेवाले संत, (३) विनयी बनवान् और (४) प्रभुकी महिमा जाननेवाला त्यागी ।

२२७२—चाहे जैसी बुरी-से-बुरी अवस्थामें भी प्रभुपर जरा भी दोषारोप न करो तो समझा जाय कि तुम्हारा प्रभुपर विश्वास है ।

२२७३—यदि दयालु प्रभु मुझे घरसे या देशसे निकाल दें, बेल्कुल दरिद्र बना दें, मोहताज और जन्मरोगी बना दें तो भी मैं तो उनपर प्रेम ही रखूँगा ।

२२७४—अगर तुम्हारेमें अवगुण हैं और दूसरे मनुष्य तुम्हें अवगुणी न कहकर सद्गुणी बतलाते हैं और उससे तुमको सन्तोष होता है, यह कैसे आश्चर्यकी बात है ?

२२७५—दो आँखोंसे और अल्पज्ञानसे तुम जितना देख या जान सकते हो, हजारों आँखोंवाले सर्वज्ञ प्रभु तुम्हारे हितकी बात उससे बहुत अच्छी देख और जान सकते हैं । इस बातको कभी मत भूलना ।

२२७६—तुम कभी अपने मनमें यह चिन्ता न करना कि हाय ! अमुकने कितने पैसे कमा लिये हैं, पर मैं गरीब हूँ । इसके बदले, यह विचार करना कि हाय ! अमुकने भगवान्‌का जितना भजन किया, उसको देखते मैंने तो कुछ भी नहीं किया ।

२२७७—शाश्वत शान्तिके केन्द्र हैं—भगवान् । वे सदा सबके हृदय-मन्दिरमें विराजमान हैं । शान्ति उनके चरण चूमती है और उसी शाश्वती शान्तिके स्पर्शसे ही मनुष्यके मनमें शान्ति आती है ।

२२७८—सारी चिन्ताओंके दूर करनेवाले सर्वशक्तिमान् भगवान्का चिन्तन करो, वे तुम्हारे परम सुहृद् हैं और सदा तुम्हारी सहायता करनेके लिये तैयार हैं ।

२२७९—जो मनुष्य संसारी मनुष्योंका सङ्ग छोड़कर निर्जन स्थानमें रहता है, उसे भगवान्का स्मरण और प्रभुकृपाके चिन्तनको छोड़कर और कुछ करना ही नहीं चाहिये । इसके बिना जो एकान्त-सेवन किया जाता है, वह तो प्रमाद, विपत्ति और मृत्युतक-को बुलानेवाला होता है ।

२२८०—सच्चा साधक काश्चन-कामिनीके कारण धर्मसे च्युत नहीं होता, परुष वचन सुनकर क्रोध नहीं करता, अपमानसे अस्वस्थ नहीं होता, लोभसे सत्यका त्याग नहीं करता, दुःखमें उसका वैर्य और उद्यम कम नहीं होता । वह सदा साधनपरायण, सदा स्वस्थ और सदा भगवान्में चित्त लगाये रहता है ।

२२८१—एक ओर भोग हैं, जिनसे जन्म-मरण, सुख-दुःख आदिका चक्र चाट्ट रहता है और दूसरी ओर भोग-त्याग है, जिससे मोक्ष मिलता है । यह मोक्ष भोगत्याग और सच्चे ज्ञानके बिना नहीं मिलता ।

२२८२—मनुष्य जो उपवास करता है या व्रत-नियम लेकर भोगत्याग करता है, वह उत्तम है; पर वह होता है थोड़े कालके

लिये । अन्तःकरणमें मनके भीतर भोगके सुखका रसास्वाद बना ही रहता है जो अवसर मिलनेपर विशेष बलपूर्वक भभक उठता है ।

२२८३—विवेक, विचार, भोगत्याग, कर्मफल-त्याग और सत्य तथा प्रिय वाणीका सेवन—इन सबको करते-करते चित्त भगवान्‌में लीन होता है ।

२२८४—प्रभुकी प्रसन्नताके लिये दरिद्रता और अपमानको सिर चढ़ाना संतोंका काम है ।

२२८५—संसारसे सम्बन्ध तोड़ देना, लोक-संसर्गसे दूर रहना और सदा-सर्वदा सत्य और प्रभुकी तरफ ही झुके रहना सच्चा त्याग है ।

२२८६—जिस मनुष्यमें ईश्वरका स्मरण-चिन्तन करनेकी ताकत है, उस मनुष्यको गरीब या लाचार न समझकर बड़ा धनी समझना और जिसके पास यह सम्पत्ति और शक्ति न हो, वह बड़ा भारी बादशाह होनेपर भी सबसे बड़ा गरीब और अनाथ है ।

२२८७—जो मनुष्य श्रोताओंको मौखिक ज्ञानसे ही ईश्वरप्राप्तिका मार्ग दिखलाता है, वह तो उन्हें दुर्दशामें ही डालता है । जो मनुष्य अपने उत्तम आचरणद्वारा भगवान्‌का मार्ग दिखलाता है वही सच्चा पथप्रदर्शक है ।

२२८८—हृदयकी सरलता और निर्मलता ईश्वरीय ज्योति है । इनसे ईश्वरका मार्ग दीखता है । क्षमा भगवान्‌की ओर आकर्षित करती है । प्रभुका भय पापसे निवृत्त करता है और प्रभु-महिमाका ध्यान इस सत्यके मार्गको काटता चला जाता है ।

२२८९—किताबोंके पढ़ने-सुननेसे अथवा लिखने-लिखानेसे

भगवान् नहीं मिलते । भगवान्की प्राप्तिमें तो आत्मनिग्रहसे भरा हुआ भगवान्का प्रेम ही महान् कारण है ।

२२९०—निवृत्ति किसे कहते हैं ? भगवान्के सिवा सम्पूर्ण विषयोंसे वृत्तियाँ हटा लेनेको ।

२२९१—जो मनुष्य लड़ाईमें दूसरोंको जीतना चाहता है, उसको छत्तीसों हथियारोंके प्राप्त करने और चलनेकी जरूरत पड़ती है; परन्तु अपने मरनेके लिये एक छोटी-सी छुरी काफी है । इसी प्रकार दूसरोंको जीतकर पण्डिताई फैलाने और मान प्राप्त करनेके लिये बहुत-सी विद्याओंकी जरूरत है, परन्तु भगवान्को प्रसन्न करनेके लिये तो आचरणका सुधार करके उनके नाम जपनेकी विद्या सीख लेना ही काफी है ।

२२९२—जो मनुष्य परमेश्वरको छोड़कर दूसरी बातोंकी चर्चा और चिन्ता करता है, वह अपने कौल-करारको भूल हुआ है ।

२२९३—जो मनुष्य भोगोंके लिये भगवान्को बेच देता है, उससे बढ़कर अभागा और कोई नहीं ।

२२९४—राजा, अफसर और बड़े आदमियोंसे दूर रहना; क्योंकि उनका स्वभाव बालकों-जैसा अस्थिर और उनका प्रताप बौखलाये हुए बाघके समान हानिकारक होता है ।

२२९५—जो मुँहसे बोलना जानता है, वह ठग है, परन्तु जो बोलता है, वैसे ही चलता है, वही पण्डित है ।

२२९६—जो मनुष्य लोगोंके सामने भगवान्की बातें करता है, परन्तु हृदयमें मान-बड़ाई और ऐसी-वैसी वस्तुओंको स्थान देता है, उसे

देर-सवेर बे-आवख होकर आफतमें पड़ना ही पड़ेगा; फिर जब वह अपनी भूलको देखकर और स्वीकार करके सच्चा पश्चात्ताप करेगा और ऐसे कामोंको छोड़कर प्रभुपरायण बन जायगा, तभी तमाम सङ्कटोंसे छूटेगा ।

२२९७—जो मनुष्य संसार-त्याग और प्रभुपरायणताकी पोशाक पहनकर लोगोंके सामने हाथ फैलाता है, उसमें लोगोंकी श्रद्धा और दया नहीं रह सकती । आखिर, उसे गिरना पड़ता है और उसका जीवन निराशा तथा विपत्तियोंमें ही बीतता है । फिर उसके हाथमें रह जाते हैं—अफसोस और अवगुण ।

२२९८—जो मनुष्य प्रभु और प्रभुके प्रेमियोंका गुण गानेके बदले अपना ही गुण गाना और गवाना शुरू कर देता है, वह बेचारा दयाका पात्र है ।

२२९९—जो मनुष्य अपने चरित्रको सावधानीके साथ जाँच करता है, उसे अपनी बहुत-सी भूलें और पतनके स्थान दिखलायी पड़ने लगते हैं, और वह सुधरकर ऊपरकी सीढ़ियोंपर चढ़ सकता है ।

२३००—तुम कभी किसी मनुष्यको गिरते-पड़ते देखो तो उसकी ओर तिरस्कार न दिखलाकर दया ही दिखलाना और सावधान रहना कि तुम्हारे जीवनमें कहीं ऐसा मौका न आ जाय ।

२३०१—त्याग-वैराग्यका गर्व धनवानोंके धन-मदकी अपेक्षा बहुत अधिक खराब है ।

२३०२—अपने लिये इस लोक और परलोककी किसी चीज—

को कभी न चाहना यही सच्ची साधुता है । जिसमें यह साधुता न आ सके, वह तो साधु नामको कलङ्कित करता है ।

२३०३—जो मनुष्य भगवत्-प्राप्तिकी साधना न करके संसारकी साधनामें ही डूबा रहता है, उसे लोक-परलोकमें दुःख और नुकसान ही मिलते हैं ।

२३०४—उदारताके समान सद्गुण नहीं है और कृपणताके समान कोई अवगुण नहीं है ।

२३०५—जीभको काबूमें रक्खो और सारा बल लगाकर मन-को वशमें करो ।

२३०६—सुखकी इच्छासे हमारा मन दुःखसे भरपूर जगत्के भोगोंकी ओर फँसा है । उसमेंसे वापस लौटाकर इसे परमात्मामें—जो आनन्दका अमित भण्डार है, लगाना है । इस कार्यमें सहायता देनेवाले पुरुषोंका ही सङ्ग और ऐसे ही ग्रन्थोंका अध्ययन करना चाहिये ।

२३०७—अगर तुम दुःखसे सर्वथा रहित दशाको प्राप्त करना चाहते हो तो संसारको प्रणाम करके चल निकलो और स्वर्गसे भी नौ गज दूरसे ही प्रणाम करके हटे रहो । इस लोक और परलोकको छोड़े बिना परमधाम नहीं मिलता ।

२३०८—लोग मुझको ईश्वरकी आराधनामें लगा हुआ जानें और देखें तो ठीक है, ऐसे विचारमें कभी न पड़ना । यह दम्भ है और मनका धोखा है । ईश्वरके प्रेममें दिखावेकी क्या जरूरत ?

२३०९—तुम चाहे किसी भी मार्गपर चलो, परन्तु भोगकी इच्छाका—विषय-सुखकी वाञ्छाका त्याग किये बिना तुम्हें अखण्ड शान्ति, अखण्ड आनन्दस्वरूप मोक्षकी प्राप्ति होगी ही नहीं ।

२३१०—प्रभुके ही प्रेमपात्र बननेकी ही कोशिश करो । याद रखो, संसारके प्रेमपात्र बनने जाओगे तो नरक और अधोगति तैयार है । यह सारकी सार बात है ।

२३११—जो भगवान्की प्राप्तिके लिये जूझता है उसकी सहायता करनेमें प्रभुको बड़ा ही आनन्द आता है ।

२३१२—साधुओंकी सेवासे तीन गुण मिलते हैं—विनय, प्रभु-भक्ति और उदारता ।

२३१३—जिसकी ऐसी इच्छा हो कि प्रभु सदा मेरे साथ रहें, उसको सत्यसे कभी न डिगना चाहिये ।

२३१४—प्रभु-प्रेमीके लक्षण क्या हैं ? (१) प्रभु-प्रेमीको इस लोक और परलोकके कोई भी पदार्थ अच्छे नहीं लगते, (२) उसका अन्तःकरण प्रभुकी महिमा और चिन्तनमें डूबा रहता है, (३) उसके मनमें प्रभुकी सेवाको छोड़कर कोई बासना नहीं रहती, (४) अपने परिवारमें रहकर खाता-पीता, बोलता-चालता और उठता-बैठता हुआ भी वह अपनेको विदेशी मेहमान ही मानता है, क्योंकि उसका जिस परम सखा प्रभुके साथ प्रेम है, वह उसे वहाँसे हटने ही नहीं देता; इस भेदको कोई अनुभवी ही जानते हैं ।

२३१५—रास्ता खुला है, सत्य चमक रहा है, जो तुम्हें बुला रहा है, वही तुम्हारी प्रार्थना भी सुन रहा है, फिर शङ्काका

और वक्त गँवानेका क्या काम ! यह या तो तुम्हारा मोह है अथवा आलसी स्वभाव है ।

२३१६—सद्गुणसे सुख होता है और दुर्गुणसे दुःख । चित्तकी शान्ति ही सुख है और चित्तकी अशान्ति ही दुःख है, अतएव प्रत्येक उपायसे अपने दुर्गुणोंको निकालकर सद्गुणोंको धारण करो । इसीसे सच्ची शान्ति मिलेगी ।

२३१७—जब भक्त सच्ची निष्ठाके साथ भगवत्-प्रेमकी साधना आरम्भ करता है, तभी उसे उसकी मधुरताका स्वाद आता है ।

२३१८—तुम शान्ति और आनन्द ढूँढ़ते फिरते हो और भटकते हो संसारके विषयोंमें; मूर्ख, कहाँ पाओगे ? ये दोनों चीजें तो प्रभुके खजानेमें ही मिलती हैं ।

२३१९—तुम अपनेको साधनाके समुद्रमें फेंक दो । सुख-दुःखकी कोई परवा न करो, हिम्मत और धीरज रखना, प्रभु अपने दयाके जहाजको लेकर सदा तुम्हारे साथ हैं ।

२३२०—ईश्वरतक पहुँचनेकी पहली सीढ़ी है प्रभुकी सत्तापर विश्वास और अन्तिम सीढ़ी है प्रभुपर विश्वास ।

२३२१—साधक दो प्रकारके होते हैं—संसारी भगवदीय । संसारी साधक जगत्को ही पहचानते हैं और उसीको खुश करनेमें लगे रहते हैं और भगवदीय साधक प्रभुको पहचानते हैं; इसलिये वे अपना हर एक साँस प्रभुकी प्रसन्नताके लिये ही लेते हैं ।

२३२२—उत्तम मनुष्य दो प्रकारके हैं—एक वे जो प्रभुके सिवा और किसी चीजको जानते और चाहते ही नहीं और दूसरे

वे जो प्रभुके विधानपर विश्वास करते हैं । इनमें पहले उच्च कोटिके हैं और दूसरे निम्न कोटिके ।

२३२३—ईश्वरभक्तोंकी उत्तम पोशाक तीन तरहकी होती है—
पवित्रता, विनय और प्रभुपर दृढ़ विश्वास ।

२३२४—जो मनुष्य भोगोंके सहवासमें रहना चाहता है, वह भगवान्‌के सहवासके लिये नालायक है ।

२३२५—जब तुम इस बातको समझोगे कि सच्चा कल्याण किस बातमें है और उसीकी खोज करोगे तब तुम्हारा अहङ्कार गलने लगेगा और कमजोरियाँ सामने आ जायँगी । इसी स्थितिमें तुम दीन होकर भगवान्‌की सहायता चाहोगे । भगवान् तो सहायता देंगे ही ।

२३२६—कौन-सी दीनता ! जो तुम्हारे हृदयको भगवान्‌के सामने उधाड़ दे, अहङ्कार और घमण्डको चूर-चूर कर दे । दीनता ईश्वरके प्रति ही होनी चाहिये, भोगोंके प्रति नहीं ।

२३२७—शुद्ध कर्तव्य-बुद्धिसे किये जानेवाले कर्ममें भी सुख है, परन्तु उसमें वह सुख नहीं है जो अपने प्राण-प्रियतम प्रभुकी प्रसन्नताके लिये किये जानेवाले कर्ममें होता है ।

२३२८—जो मनुष्य छोटे पापोंको बहुत मामूली समझकर किये जाता है, वह थोड़े ही समय बाद बड़े-बड़े पापोंसे और अन्तमें महान् विपत्तिसे घिर जाता है ।

२३२९—अगर तुम प्रभुके प्रेमी हो अथवा प्रभुकी कृपा प्राप्त करना चाहते हो तो जब भी कोई शुभ कर्म करो तब लोगोंसे चाह-वाही पानेकी, मान मिळानेकी, स्मारक रहनेकी और लोक-

प्रतिष्ठाकी किसी भी भावकी और किसी भी वस्तुकी मनमें जरा भी इच्छा न रखना, नहीं तो धोखा खाओगे ।

२३३०—तुम जो कुछ भी सत्कार्य करो, ऐसा मन लगाकर करो कि सारे जगत्में भगवान्ने वह काम केवल तुमको ही सौंपा है । और सौंपा भी है तुमको अकेले जानकर गुप्त-चुप करनेके लिये ही ।

२३३१—मनुष्यके जीवनमें जितने दिन बाकी हैं, यदि वह उनका भी सदुपयोग करे तो भगवान् उसकी पहलेकी सारी भूलों और पापोंको धोकर उसे क्षमा कर देंगे और अपना लेंगे ।

२३३२—मान-बढ़ाईकी प्राप्तिमें, यदि मनमें हर्ष होता हो तो जान लेना चाहिये कि मान-बढ़ाईमें आसक्ति और कामना है । चाहे ऊपरसे न दीखती हो । लोकोपकारके नामपर मान-बढ़ाईका स्वीकार करना तो और भी धोखेकी चीज है ।

२३३३—जो लोग प्रशंसा सुनकर तनिक भी हर्षके विकारसे ग्रस्त नहीं होते और निन्दा सुनते ही धीरताके साथ गहराईसे आत्मनिरीक्षण करने लगते हैं, वे ही सच्चे बुद्धिमान् साधक हैं ।

२३३४—मनुष्यको ऐसा कोई भी दोषयुक्त कार्य कभी छिपकर भी नहीं करना चाहिये, जिससे भगवान्की दृष्टिमें वह दोषी सिद्ध हो ।

२३३५—सच्चा साधक प्रभु-प्रेमी नहीं बन जाता वहाँतक लोगोंको मुँह नहीं दिखाता । लोग बुलवाना चाहें तो भी नहीं बोलता, विपत्तिमें खेद नहीं करता, सम्पत्तिमें फूलता नहीं, डरता नहीं और डराता भी नहीं, किसीको वचन देता नहीं और किसीसे वचन माँगता भी नहीं । गुप्त-चुप अपनी सीधी राह जाता है । यह साधककी बात है, सिद्धकी सिद्ध जानें ।

२३३६—सब कुछ खोकर भी यदि मनुष्य भगवत्प्रेम प्राप्त कर ले और प्रभुकी सन्निधि प्राप्त करनेके लिये व्याकुल हो जाय तो जानना चाहिये कि उसका जीवन सफल हो गया ।

२३३७—भय कई तरहके हैं; इसलिये जो भय तुमको पापों-से दूर रखे उस भयकी भी इच्छा करनी चाहिये ।

२३३८—आशाएँ भी बहुत प्रकारकी हैं, परन्तु जो आशा तुम्हें प्रभुकी राहपर चलावे, उसे तो मित्र ही मानना ।

२३३९—जो मनुष्य दुनियावी बातें सुनता रहता है और विषय-प्रेमियोंमें बसता है, उसका अन्तःकरण साधनाका स्वाद नहीं ले सकता ।

२३४०—अच्छी स्थिति हो जायगी, दुनियाका कोई दुःख नहीं रहेगा, भगवान् हमारी हर एक इच्छाको पूर्ण करते रहेंगे, तब हम भजन करेंगे, ऐसा मानना तो मनका धोखा है । तुम भगवान्‌का भजन तो चाहते नहीं, चाहते हो संसारी आराम ।

२३४१—कोई अगर यों समझता है कि मैं अपने ही साधन-के बलपर प्रभुको पा लूँगा तो वह अपनेको मिथ्या अभिमानके गड्ढेमें डालता है; और जो मनुष्य बिना ही साधन किये प्रभुको पाना चाहता है, वह तो दुराशामें ही डूबता है ।

२३४२—संसारकी सारी स्थितियोंसे अन्तःकरणको मुक्त करके सच्चिदानन्द प्रभुमें ही शान्ति खोजना और प्राप्त करना—मनुष्यका सच्चा धर्म यही है ।

२३४३—भगवान्‌के गुणानुवाद तीन प्रकारसे गाये जाते हैं—
(१) केवल जीभसे अन्तःकरणको साथ जोड़े बिना ही, (२)

जीभसे अन्तःकरणको साथ जोड़कर, ऐसे ही गुणगानसे शीघ्र प्रभु-
रूपा मिलती है, (३) केवल अन्तःकरणसे; मतलब यह है कि
प्रभुके गुणगानमें मन, बुद्धिका गर्क हो जाना ही सर्वोत्तम गुणगान
है । ऐसे गुणगानकी महिमा प्रभु ही जानते हैं ।

२३४४—जो ज्ञान तुमको धर्ममें और सदाचारमें प्रेरित करता
है, वही सच्चा ज्ञान है और जो विश्वास प्रभुके प्रति अधिक-से-
अधिक नम्र बनाता है, वही सच्चा विश्वास है ।

२३४५—जिनमें भगवान्को छोड़कर किसी भी वस्तुमें जरा
भी अनुराग नहीं रहता, वे ही सच्चे महाजन या महापुरुष हैं ।

२३४६—जबतक मनुष्य पश्चात्तापके लिये तैयार न हो, तब-
तक क्षमाकी याचना न करे और जबतक तन-मनसे उपासना न
हो तबतक न तो पाप दूर होते हैं और न मन ही असली राहपर
आता है ।

२३४७—संसार कुत्तोंकी चाट-जैसा है । बहुत-से कुत्ते एक
जगह इकट्ठे होकर पत्तल चाटा करते हैं, परन्तु जो मनुष्य निरन्तर
आंग-विलासमें रचा-पचा रहता है, वह तो कुत्तोंसे भी अधम है ।
क्योंकि कुत्ते तो खा लेनेके बाद चाटसे दूर हट जाते हैं, पर यह
मनुष्य तो वहाँ-का-वहाँ ही खड़ा रहता है ।

२३४८—दैवी सम्पत्तिमें प्रेम होना प्रभुप्रेमका पूर्वरूप है ।

२३४९—पैसोंको बुरे उपयोगसे रोकनेकी अपेक्षा जीभको
बुरे उपयोगसे रोकना बहुत कठिन है ।

२३५०—संसारमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं, जिसमें ईश्वर न
दीखता हो ।

२३५१—खबरदार ! एक पैसा भी कमाओ तो न्यायसे कमाना और कहीं कुछ खर्च करना तो अच्छे मार्गमें ही खर्च करना ।

२३५२—दो बातोंपर पूरा विश्वास रखना—(१) तुम्हारे लिये जो कुछ रचा हुआ है, तुम दूर भागोगे तो भी वह तुम्हें मिलेगा ही और (२) जो दूसरेके लिये रचा गया है, वह करोड़ यत्न करनेपर भी तुम्हें नहीं मिलेगा ।

२३५३—तुम बड़े खराब जमानेमें आ पड़े हो । इस जमानेके आदमी काम नहीं करते, पर बोलते रहते हैं और धर्मका पालन करनेके बदले सूखे ज्ञानके पढ़ने-पढ़ानेमें ही डूबे रहते हैं ।

२३५४—जहाँ खुद प्रभुकी प्रसन्नता खोजनी और पानी चाहिये, वहाँ आज लोग दुनियाकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये दौड़-धूप कर रहे हैं और चिन्तामणि-जैसी प्रभु-कृपाको भूल रहे हैं ।

२३५५—इस जमानेमें चुपचाप भगवान्‌का स्मरण करना और उनकी कृपापर विश्वास करके, अपने जीवनको उन्हींपर न्योछावर कर देना उचित है । दयामय आप ही सम्हालेंगे ।

२३५६—अधिक परिश्रमसे स्वास्थ्य नहीं बिगड़ता; स्वास्थ्यको नुकसान पहुँचता है घबराहट, शोक, भय, चिन्ता और असन्तोषसे ।

२३५७—जबतक बात तुम्हारे मुँहसे नहीं निकली तबतक तो वह तुम्हारे वशमें है, पर ज्यों ही मुँहसे निकल गयी कि तुम उसके वशमें हो गये ।

२३५८—यदि जीभको वशमें कर लो तो दूसरी इन्द्रियाँ सहज ही तुम्हारे वश हो जायँ और दुनियाकी शत्रुतासे तुम बच जाओ ।

२३५९—दो आदमी बात करते हों तो उनके बीचमें न बोलो, अपनी बुद्धिमानी दिखानेका प्रयत्न मत करो; ऐसी बात तो बोलो ही मत, जिससे उन लोगोंकी बात कटे या उन्हें नीचा देखना पड़े, अपनी और अपने वंशकी बड़ाई मत करो, दूसरा कोई करता हो तो उसे बुरा मत कहो, चिछाकर न बोलो, ऐसी आवाज और ऐसे भावसे न बोलो, जिसमें सुननेवालोंको तुम्हारी हुकूमत या अपना तिरस्कार प्रतीत हो ।

२३६०—अपने बन्धु-बान्धव और पड़ोसियोंका उनकी सच्ची प्रशंसा करनेके अवसरको छोड़कर जहाँतक बने कभी जिकर ही न करो ।

२३६१—मुँहसे झूठ तो कभी बोलो ही मत, पर सत्य भी अनावश्यक न बोलो । बहुत बोलनेसे वाणीकी शक्ति नष्ट होती है ।

२३६२—भगवान्का नाम और उनके गुणोंकी चर्चा करते रहो और इसको भी कहनेकी अपेक्षा मन-ही-मन करो तो और भी अच्छा है ।

२३६३—भगवान्ने मनुष्योंको आँख और कान तो दो-दो दिये हैं, पर जीभ एक ही । इसलिये उचित है कि चार बातोंको देख-सुनकर एक बात बोलो ।

२३६४—जिस तरह वृक्षमें पत्ते बहुत हो जानेपर फल कम लगते हैं, इसी प्रकार जो बहुत बोलता है, उससे काम बहुत कम होता है ।

२३६५—बहुत प्रश्न करना बुद्धिमानी नहीं है । महात्मासे एक ही बात पूछ लो और जी-जानसे उसका पालन करो ।

२३६६—आर्य स्त्री पतिके द्वारा परित्यक्ता होनेपर भी पतिकी मङ्गलकामना ही करती है और इसीमें अपना सौभाग्य समझती है । इसी प्रकार भक्तको भी अपने भगवान्से ऐसा ही व्यवहार करना चाहिये ।

२३६७—बिना पूछे न उपदेश करो और न सलाह देने जाओ ।

२३६८—जो मनुष्य अच्छी सलाह नहीं सुनता, उसको धिक्कार सुनना पड़ता है ।

२३६९—मूर्खताके बारह लक्षण हैं—(१) भगवान्को भूलना, (२) समयकी कीमत न समझना, (३) अपनेको बड़ा मानना, (४) एकान्तमें बात करते हुए लोगोंके बीच जा बैठना, (५) बड़े लोगोंकी दिल्ली उड़ाना, (६) अपनी हैसियतसे ज्यादा खर्च करना, (७) सभामें ऊँची जगह बैठनेकी कोशिश करना, (८) बहुत बोलना और ऐसा बोलना जो दूसरोंको अखरे, (९) दूसरोंसे उधार लेना और उसे चुकानेकी चिन्ता न रखना, (१०) किसी भोजमें बिना न्योते जा पहुँचना, (११) अतिथि होकर घरके मालिकपर हुक्मत करना और (१२) स्त्रियोंके अङ्ग देखनेकी चेष्टा करना । इन बारह दोषोंसे बचनेवाला मनुष्य बहुत-सी आफतोंसे अनायास ही बच जाता है ।

२३७०—जहाँतक हो सके, मित्रोंमें लेन-देन मत रखो ।

२३७१—अपनी कमाईमेंसे दसवाँ हिस्सा, नहीं तो कम-से-कम सोलहवाँ हिस्सा गरीबोंको बाँटनेके लिये जरूर अलग कर

रक्खो । नहीं तो कमाई अशुद्ध होगी और उसकी बरकत नहीं होगी ।

२३७२—किसीको दान देकर यह मत समझो कि तुमने उसपर कोई अहसान किया है । उसे दिया है भगवान् ने ही और वही दिया है जिसके पानेका वह अधिकारी था; तुम तो केवल निमित्तमात्र हो ।

२३७३—दरिद्र, अपाहिज, रोगी, अनाथ और विपत्तिमें पड़े हुए जीवोंको अपनेसे छोटा मत समझो, उनसे घृणा न करो, उनकी सेवा करो और उन्हें सुख पहुँचाओ । भगवान् न करें, तुम्हारी भी जीवनमें वैसी ही अवस्था हो सकती है ।

२३७४—अपनी तारीफ सुनकर उसका रस न लो और निन्दा सुनकर विषाद अथवा क्रोध न करो ।

२३७५—दूसरोंके गुण सुनकर सुखी होओ और उन गुणोंको अपनेमें लानेकी चेष्टा करो ।

२३७६—दूसरोंके अवगुण सुनकर खुश न होओ और स्वयं सदा अवगुणोंसे बचते रहो ।

२३७७—जो सज्जनोंको देखकर, दूसरोंके सद्गुणोंकी बात सुनकर और दूसरोंको सुखी देखकर प्रसन्न होते हैं, उनपर भगवान् की कृपा बरसती है ।

२३७८—यहाँके सभी सम्बन्ध आरोपित हैं । अपना-अपना कर्मफल भोगनेके लिये जीव विविध योनियोंमें आते हैं और कर्मफल भोगकर चले जाते हैं । इसमें शोककी वास्तवमें कोई बात नहीं है ।

२३७९—जिसने कामनापर विजय प्राप्त कर ली, वह रंक होनेपर भी राजा है। और जो कामनाका गुलाम है, वह बादशाह होनेपर भी कंगाल है।

२३८०—अभिमान बहुत बड़ा शत्रु है। जिसके अंदर अभिमान आ बसता है उसका सद्गुणरूप धन नष्ट हो जाता है।

२३८१—यह सोचो कि तुम्हारी बिना ही क्या है, भगवान् की दयाके बिना अपने पुरुषार्थसे तुम क्या कर सकते हो ? जो कुछ होता है, उन्हींकी शक्तिसे। तुम तो बिल्कुल नाचीज हो। बार-बार ऐसा विचार करनेसे अभिमान चला जाता है।

२३८२—भगवान् को अभिमानसे द्वेष है, और दीनतासे प्यार। याद रखो, भगवान् का नाम दीन-बन्धु है, अभिमानी-बन्धु नहीं।

२३८३—बड़ा आदमी वह है कि जिसके गुणोंके कारण दूसरे लोग उसको बड़ा मानते हों। आप ही अपनेको बड़ा मानना तो मूर्खता है।

२३८४—सबसे बड़े भगवान् हैं; परन्तु उनकी बड़ाई भी तभी फैली जब भृगुजीके छातको उन्होंने खुशी-खुशी सह लिया।

२३८५—मृत्यु शरीरका अवश्यम्भावी परिणाम है। दो दिन आगे-पीछे सबकी यही गति होनेवाली है। लोगोंको शोक होता है—ममत्व और स्वार्थके कारण। जिसमें ममत्व और स्वार्थ नहीं होता उसके वियोगमें जरा भी दुःख नहीं होता।

२३८६—भगवान् की भक्ति, भगवान् के नामका जप और अपने घरमें भगवान् की पूजा करनेका सभीको अधिकार है। स्त्री हो या पुरुष—यह सभीके लिये मङ्गलकारी कार्य है। किसीको

भगवान्की भक्ति-पूजा करनेसे रोकना पाप है और इससे परिणाममें दुःखकी प्राप्ति होती है ।

२३८७—विपत्ति तुम्हारे प्रेमकी कसौटी है । विपत्तिमें पड़े हुए बन्धु-बान्धवोंमें तुम्हारा प्रेम बढ़े और वह तुम्हें निरभिमान बनाकर आदरके साथ उनकी सेवा करनेको मजबूर कर दे, तभी समझो कि तुम्हारा प्रेम असली है ।

२३८८—जिस तरह खरादे बिना सुन्दर मूर्ति नहीं बनती, उसी तरह विपत्तिसे गढ़े बिना मनुष्यका हृदय सुन्दर नहीं बनता ।

२३८९—विपत्तिमें कभी निराश मत होओ । याद रखो, अन्न उपजाकर संसारको सुखी कर देनेवाली जलकी बूँदें काली घटासे ही बरसती हैं ।

२३९०—विपत्ति असलमें उन्हींको विशेष दुःख देती है, जो उससे डरते हैं । जिसका मन दृढ़ हो, संसारकी अनित्यताका अनुभव करता हो और हरेक बातमें भगवान्की दया देखकर निडर रहता हो, उसके लिये विपत्ति फूलोंकी सेजके समान है ।

२३९१—विपत्ति आनेपर यदि तुम उसके सहन करनेकी शक्ति रखते हो तो घबड़ाओ मत; अपना बल लगाकर उसे निकाल दो और यदि तुम्हारी ताकत उसे नाश नहीं कर सकती तब भी रोओ मत । जरूर एक बार विपत्ति तुम्हें परेशान करना चाहेगी, परन्तु फिर आप ही नष्ट हो जायगी ।

२३९२—जैसे रास्तेमें दूरसे पहाड़ियोंको देखकर मुसाफिर घबरा उठता है कि मैं इन्हें कैसे पार करूँगा, लेकिन पास पहुँचने-

पर वे उतनी कठिन नहीं मालूम होतीं, यही हाल विपत्तियोंका है । मनुष्य दूरसे उन्हें देखकर घबरा उठता है और दुखी होता है, लेकिन जब वे ही सिरपर आ पड़ती हैं तो धीरज रखनेसे थोड़ी-सी पीड़ा पहुँचाकर ही नष्ट हो जाती हैं ।

२३९३—विपत्ति पड़नेपर पाँच प्रकारसे विचार करो—

- १—तुम्हारे अपने ही कर्मका फल है, इसे भोग लोगे तो तुम कर्मके एक कठिन बन्धनसे छूट जाओगे ।
- २—विपत्ति तुम्हारे विश्वासकी कसौटी है, इसमें न घबड़ाओगे तो तुम्हें भगवान्की कृपा प्राप्त होगी ।
- ३—विपत्ति मङ्गलमय भगवान्का विधान है और उनका विधान कल्याणकारी ही होता है । इस विपत्तिमें भी तुम्हारा कल्याण ही भरा है ।
- ४—विपत्तिके रूपमें जो कुछ तुम्हें प्राप्त होता है, यह ऐसा ही होनेको था, नयी चीज कुछ भी नहीं बन रही है; भगवान्का पहलेसे रचकर रक्खा हुआ दृश्य सामने आता है ।
- ५—जिस देहको, जिस नामको और जिस नाम तथा देहके सम्बन्धको सच्चा मानकर तुम विपत्तिसे घबड़ाते हो; वह देह, नाम और सम्बन्ध—सब आरोपमात्र है; इस जन्मसे पहले भी तुम्हारा नाम, रूप और सम्बन्ध था, परन्तु आज उससे तुम्हारा कोई सरोकार नहीं है; यही हाल इसका भी है; फिर विपत्तिमें घबड़ाना तो मूर्खता ही है; क्योंकि विपत्तिका अनुभव देह, नाम और इनके सम्बन्धको लेकर ही होता है ।

२३९४—असली बात तो यह है कि विधान और विधाता एक ही हैं; विपत्तिके रूपमें सचमुच भगवान् ही तुम्हारे सामने आते हैं ।

२३९५—चार बातोंको याद रखो—बड़े-बूढ़ोंका आदर करना, छोटीकी रक्षा और उनपर स्नेह करना, बुद्धिमानोंसे सलाह लेना और मूर्खोंके साथ कभी नहीं उलझना ।

२३९६—चार चीजें पहले दुर्बल दीखती हैं, परन्तु परवा न करनेसे बहुत बढ़कर दुःखके गड्ढेमें डाल देती हैं—अग्नि, रोग, ऋण और पाप ।

२३९७—चार चीजोंका सदा सेवन करना चाहिये—सत्सङ्ग, सन्तोष, दान और दया ।

२३९८—चार अवस्थाओंमें आदमी विगड़ता है । इसलिये इनमें सावधान रहना चाहिये—जवानी, धन, अधिकार और अविश्वेक ।

२३९९—चार चीजें मनुष्यको बड़े भाग्यसे मिलती हैं—भगवान्‌को याद रखनेकी लगन, संतोंकी सङ्गति, चरित्रकी निर्मलता और उदारता ।

२४००—चार गुण बहुत दुर्लभ हैं—धनमें पवित्रता, दानमें विनय, वीरतामें दया और अधिकारमें निरभिमानता ।

२४०१—चार चीजोंपर भरोसा मत करो—बिना जीता हुआ मन, शत्रुकी प्रीति, स्वार्थीकी खुशामद और बाजारू ज्योतिषियोंकी भविष्य-वाणी ।

२४०२—चार चीजोंपर भरोसा रखो—भगवान्, सत्य, पुरुषार्थ और स्वार्थहीन मित्र ।

२४०३—चार चीजें जाकर फिर नहीं लौटतीं—मुँहसे निकली हुई बात, छूटा हुआ तीर, बीती हुई उम्र और मिटा हुआ अज्ञान ।

२४०४—चार बातोंको याद रखो—दूसरेके द्वारा किया हुआ अपनेपर उपकार, अपने द्वारा किया हुआ दूसरेका अपकार, मृत्यु और भगवान् ।

२४०५—चारके सङ्गसे बचनेकी चेष्टा रखो—नास्तिक, अन्यायका धन, जवान स्त्री और दूसरेकी बुराई ।

२४०६—चार चीजें अपने-आप आती हैं—सुख, दुःख, जीविका और मृत्यु ।

२४०७—चारका परिचय चार अवस्थाओंमें मिलता है—दरिद्रतामें मित्रका, निर्धनतामें स्त्रीका, रणमें शूरवीरका और बदनामीमें बन्धु-बान्धवोंका ।

२४०८—धनके साथ दो लुटेरे लगे रहते हैं, जो निरन्तर दैवी गुणोंको छूटते रहते हैं—एक अभिमान और दूसरा खुशामदी ।

२४०९—संसारके लोग चञ्चल लक्ष्मीके पीछे जितने पचते हैं उससे सौवाँ हिस्सा परिश्रम भी यदि परमार्थके लिये करें तो उन्हें अचल सम्पत्ति मिल सकती है ।

२४१०—पापकर्म सभीके लिये बुरा है; परन्तु विद्वान्के लिये तो बहुत बुरा है; क्योंकि अन्या मूर्ख तो आँख न होनेसे राह भूलता है, पर विद्वान् दोनों आँख होते हुए भी कुएँमें गिरता है ।

२४११—तुमसे कोई वैर रखता हो तो तुम केवल इतना देखो कि तुम्हारी किसी क्रियासे उसकी हानि तो नहीं हुई, उसे दुःख तो नहीं पहुँचा । यदि ऐसा नहीं है तो अपने मनको दुखी मत करो और उसपर प्रेम तथा दया बनाये रखो ।

२४१२—तुम्हारा कोई पूर्वकर्म जबतक कारण नहीं होगा, तबतक तुम्हें कोई दुःख नहीं पहुँचा सकता। अगर किसीके द्वारा दुःख मिलता है तो यह समझो कि वह बेचारा तो केवल निमित्त बना है और दयाका पात्र है।

२४१३—क्रोध चार तरहका होता है—(१) लोहेमें लकीर-सा, (२) पत्थरमें लकीर-सा, (३) बाछमें लकीर-सा और (४) पानीमें लकीर-सा। लोहेमें लकीर-सा तामसी मनुष्योंका होता है, जो जन्म-जन्मान्तरतक चलता है। पत्थरमें लकीर-सा राजसी पुरुषोंका होता है जो कुछ दिनोंमें मिट जाता है। बाछमें लकीर-सा सात्विक सज्जनोंका होता है जो हवाके झोंकेसे बाछकी लकीरकी भाँति तुरंत नष्ट हो जाता है और पानीमें लकीर-सा संतोंका होता है जो आता-सा दीखता है पर वास्तवमें होता नहीं।

२४१४—बुरी बातोंसे बचनेके ये ग्यारह उपाय हैं—भगवान्से प्रार्थना करना, सत्सङ्ग करना, कुसङ्गसे सर्वथा दूर रहना, आलस्य और प्रमाद न करना, नाच, तमाशा, नाटकादि न देखना, बुरी किताबें न पढ़ना, मन और इन्द्रियोंको बुरे विषयोंकी ओर जानेसे रोकते रहना, एकान्तमें मन और इन्द्रियोंकी विशेष रखवाली करना, महात्माओंके वचनों और शास्त्रोंकी शिक्षाओंको याद रखना, अपनी स्थितिको सर्वथा देखते रहना तथा मृत्यु, नरकोंकी यन्त्रणा और बुरी योनियोंके कष्टकी बातोंको याद करते रहना।

२४१५—बुद्धिमान् वह है जो जीवनमें सबसे जरूरी कामको सबसे पहले करता है। मनुष्यके जीवनमें सबसे जरूरी काम है—मालिकका चिन्तन।

२४१६—भगवान्की प्रसन्नताके लिये किसी बाहरी आडम्बरकी, वेष-भूषाकी, बोलचालके खास ढंगकी, आदेश-उपदेशकी, स्वाँग बनानेकी और साधु सजनेकी आवश्यकता नहीं है । भगवान्की प्रसन्नताके लिये तो केवल चाहिये—निर्मल और भक्तिपूर्ण मन ।

२४१७—जीव अकेला ही जन्म लेता है, अकेला ही मरता है, अकेला ही पुण्यका फल भोगता है और अकेला ही पापसे उत्पन्न होनेवाले दुःखोंको भोगता है ।

२४१८—भगवान् ही सर्वश्रेष्ठ हैं और वे ही हमारे स्वामी, शरण ग्रहण करने योग्य, परम गति, परम आश्रय, माता-पिता, भाई-बन्धु, परम हितकारी, परम आत्मीय और सर्वस्व हैं, उनको छोड़कर हमारा अन्य कोई भी नहीं है—इस भावसे जो भगवान्के साथ अनन्य सम्बन्ध है, उसका नाम 'अनन्य योग' है ।

२४१९—जब बच्चा माताके पेटमें रहता है, तब अज्ञानवश हाथ-पैर पीटता है, परन्तु क्या माता उसे अपराध समझती है ? इसी प्रकार भगवान् जीवोंके अपराधपर दृष्टि नहीं डालते; क्योंकि सभी तो उनकी ही प्यारी संतान हैं ।

२४२०—अच्छे कर्मोंमें लगे रहो । कोरे मनके लड्डुओंमें लीन मत रहो ।

२४२१—संसारके सुख क्षणभङ्गुर हैं । तबतक किसीको सुखी नहीं समझना चाहिये जबतक कि वह सुखकी स्थितिमें मर न जाय ।

२४२२—मरनेके पहले किसीको महात्मा न समझो, पता नहीं मनुष्य कब गिर जाय । संसारमें जगह-जगह फिसलान भरी है ।

२४२३—जिसने कभी दुःख नहीं उठाया, वह सबसे बड़ा

दुखिया है और जिसने कभी पीर न सही, वह सबसे बढ़कर बेपीर है; क्योंकि ऐसा हुए बिना दूसरोंके दुःख और पीड़ाका अनुभव नहीं हो सकता और जो दूसरोंके दुःखका अनुभव नहीं करता, उसे परिणाममें दुखी होना ही पड़ता है ।

२४२४—और सब बातोंको कलपर छोड़ दो, परन्तु भगवान्का स्मरण और परोपकारमें एक मिनटकी भी देर न करो ।

२४२५—जैसे हम द्वेषके द्वारा जगत्को नरकरूप बना देते हैं वैसे ही प्रेमसे उसे स्वर्गसे भी बढ़कर बना सकते हैं ।

२४२६—क्रोध दिलानेपर भी चुप रहना बुद्धिमानी और महत्त्व है । महिमा जीभके वेगको रोकनेमें है और इससे भी बढ़कर महत्त्व मनके वेगको रोकनेमें है ।

२४२७—आशाके वशमें हुए मनुष्य क्षण-क्षणमें दुःख भोगते हैं । जो आशाके दास हैं, वे समस्त संसारके दास हैं और जिन्होंने आशाको अपनी दासी बना लिया है, उनके लिये यह सम्पूर्ण जगत् दासके तुल्य है ।

२४२८—मनको सदैव शान्त रखो; चाहे तुम्हारे चारों ओर कितने ही विषाद हों और कितने ही क्लेशके कारण मौजूद हों ।

२४२९—तीन काम बड़े महत्त्वके हैं—प्राणिमात्रपर दया करके उनके दुःखोंको दूर करना, निर्बलों और असहायोंकी सहायता करना और शत्रुको भी दुःख तथा निन्दासे बचाना ।

२४३०—भगवान् विष्णुकी भक्ति ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चारों पुरुषार्थोंकी जड़ है । भक्ति ही भगवान्को वशमें करनेका उपाय है ।

२४३१—तीन कार्य मुख्य हैं—पापमें अत्यन्त ग्लानि, धर्मके लिये कभी न बुझनेवाली प्यास और प्राणिमात्रके साथ हृदयकी सहानुभूति ।

२४३२—जो भक्तिसे रहित है, वह यदि सुवर्ण आदिसे भगवान्की पूजा करे, तो भी वे उसकी पूजा ग्रहण नहीं करते । सभी वर्णोंके लिये भक्ति ही सबसे उत्कृष्ट मानी गयी है ।

२४३३—आकाशमें उड़ना आदि तो इन्द्रजालके तमाशे हैं । इनसे परलोकमें कोई सहारा नहीं मिलता । महात्माओंकी सच्ची सिद्धि तो वह है कि उनके सङ्ग और उपदेशसे पापी मनुष्य सदाचारी हो जाता है और परमार्थके मार्गपर लगकर संत बन जाता है ।

२४३४—जो मनुष्य पढ़कर उसका धारण नहीं करता, उसके लिये विद्या भार है । उसके सङ्गसे किसीको लाभ नहीं होता ।

२४३५—जो मनुष्य अपना कल्याण नहीं चाहता, पापके फल दुःखको नहीं मानता और ईश्वरको माननेमें भी आनाकानी करता है, उसको उपदेश करना व्यर्थ है ।

२४३६—कामनाओंका दास भी बना रहे और सुख भी प्राप्त कर ले—यह असम्भव है ।

२४३७—भगवान्के प्रेम और भोगोंके प्रेममें इतना ही अन्तर है जितना सूर्य और अन्धकारमें ।

२४३८—ईश्वरकी सत्ता माने बिना धर्मकी जड़ ही सूख जाती है । ऐसा धर्म, जिसमें ईश्वरको स्थान नहीं है, घोर अधर्म है ।

२४३९—जो इच्छाएँ तुम्हारे आडम्बर और बनावटीपनको हटाती हैं, वे ही शुभ इच्छाएँ हैं ।

२४४०—अपने नामकी बड़ाई चाहनेमें विरक्त भी फँस जाते हैं और अपना दोष प्रकट करनेवाले फँसे भी छूट जाते हैं ।

२४४१—वर्तमान जीवनको भूलकर भावनामय भावी जीवनपर विश्वास न करो, चाहे वह कितना ही आनन्दमय प्रतीत क्यों न होता हो ।

२४४२—कहनेसे कुछ भी काम नहीं सरता, काम चलता है करनेसे ।

२४४३—कहनेवाले वक्ताके जीवनको मत देखो; वह जो कहता है, उसपर गौर करो ।

२४४४—अपना कोई तृणके समान उपकार करे तो उसे पहाड़के समान समझो और तुम पहाड़के समान करो तो भी उसे बालूके कणसे भी कम मानो ।

२४४५—जो काम तुम स्वयं नहीं चाहते, वह दूसरोंके लिये भी मत करो ।

२४४६—किसी दूसरेका काम करना स्वीकार कर लो तो उसे वैसे ही उत्साह और लगनसे करो जैसा अपना करते हो ।

२४४७—धनकी प्यास जलकी प्याससे कहीं बढ़कर दुःखदायिनी है । जलकी प्यास तो जल मिल जानेपर शान्त हो जाती है, परन्तु धनकी तृष्णा धन मिलनेपर और भी बढ़ती है ।

२४४८—सहज ही अपने पास आनेवाले जिज्ञासुओंको अवकाशके अनुसार उपदेश करो, परन्तु उपदेशके लिये ही कमर कसकर न बैठो । ऐसा करना अपने अमूल्य समयको खोना है ।

२४४९—जो धर्मके नामपर छल या पाप करता है अथवा झूठे मतका प्रचार करके लोगोंको ठगता है उसके समान दूसरा कोई पापी नहीं ।

२४५०—दुःखमें दुखी और सुखमें सुखी होनेवाला लोहेके समान है; दुःखमें भी सुखी रहनेवाला सोनेके सदृश है, दुःख-सुखमें बराबर रहनेवाला रत्नके तुल्य है और जो सुख-दुःखकी भावनासे भी परे है वह सच्चा सम्राट् है ।

२४५१—शास्त्रकी बातें यदि भूल जायँ तो फिर याद कर ली जा सकती हैं; परन्तु सदाचारसे एक बार भी भ्रष्ट हो जानेपर सम्भलना मुश्किल होता है ।

२४५२—अधर्मके द्वारा इकट्ठी की हुई सम्पत्तिकी अपेक्षा सदाचारी पुरुषकी दरिद्रता कहीं अच्छी है ।

२४५३—लोगोंको रूलाकर जो सम्पत्ति इकट्ठी की जाती है वह आर्तस्वरसे रोनेकी आवाजके साथ ही विदा हो जाती है । पर जो धर्मके द्वारा संचित होती है वह बीचमें किसी कारणवश क्षीण हो जानेपर भी अन्तमें खूब फूलती-फलती है ।

२४५४—जब तुम दिलके मकर छोड़कर सीधे हो जाओगे तब तुम्हारे सारे काम अपने-आप ही सीधे हो जायँगे ।

२४५५—ईश्वरका साक्षात्कार तब होगा जब संसारकी दृष्टिसे प्रतीत होनेवाले बड़े-से-बड़े वैरियोंको भी क्षमा करनेका तुम्हारा स्वभाव बन जायगा ।

२४५६—देह, बुद्धि, लेख, व्याख्यान, घर, कुटुम्ब, यश और प्रतिष्ठा आदि प्रत्येक दावेका त्याग ही वेदान्त है ।

२४५७—संतके लक्षण
झूठा समझना और उस

(२) अपनी प्रशंसा

प्रसन्न होना, (३)

सुखसे भी अधिक

दयाका तथा बड़ोंके

भी किसीके साथ च

२४५८—

चेष्टा न करो,

और चेहरेपर सा

२४५९—जिस मनुष्यकी अच्छे काम करनेवाली होती है, वह बड़ा भाग्यवान् है ।

२४६०—जो अपने अच्छे कर्मोंके बदलेमें धन्यवाद, वाहवाही अथवा किसी और फलकी चाह करता है वह अत्यन्त अभागा है; क्योंकि वह बहुमूल्य सत्कर्मोंको थोड़ी कीमतपर बेच डालता है ।

२४६१—जिस मनुष्यकी भलाई की हो उसे सुखी देखनेमें प्रसन्नताका होना ही भलाई करनेवालेके लिये पूरा पुरस्कार है ।

२४६२—सबके साथ भलाई करो; यदि तुम्हारे साथ कोई बुराई करता है तो उसकी जिम्मेवारी उसपर है, तुम उसकी देखा-देखी अपने मनको कलुषित करके कर्तव्यसे न हटो ।

२४६३—दूसरोंको सुख पहुँचाना और उनका हित करना भगवान् ने तुम्हारे जिम्मे दिया है । दण्ड देना तो उनका अपना काम

भगवान्‌के आसनको छीननेकी

सा सुन्दर धन है कि

सकता है ।

र है । प्रेममें द्वेष,

तोष, अपकार और

प्रसन्न करनेका

हैं; क्योंकि परम

पताका दयाके वे ही भागी हैं ।

२४६८—शत्रुको प्यार करो, अपराधीको क्षमा करो, प्रभुके लिये दान दो और अपने लिये कुछ भी न चाहो ।

२४६९—प्रभु कहते हैं कि जो नीच-से नीच मनुष्यकी सेवा करता है वही मेरी सेवा करता है ।

२४७०—जो किसीको दुःखमें देखकर उसपर दया नहीं करता, वह मालिकके कोपका पात्र होता है ।

२४७१—मनकी तरङ्गोंको रोकनेमें बड़ा आनन्द है । इस आनन्दका अनुभव नहीं हुआ इसीलिये मनुष्य विषयोंके आनन्दके पीछे भटकता है ।

२४७२—जो श्रीकृष्ण नामके उच्चारणरूपी पथ्यका कलियुगमें कभी त्याग नहीं करता, उसके चित्तमें पापरूपी रोग पैदा नहीं होते । श्रीकृष्णका नाम-कीर्तन करते हुए मनुष्यकी आवाज सुनकर

दक्षिण दिशाके अधिपति यमराज उसके सौ जन्मोंके पापोंका परिमार्जन कर देते हैं ।

२४७३—जो दिन रात श्रीकृष्णके नामोंका कीर्तन नहीं करती वह जिह्वा नहीं है, वह तो मुखमें कोई पापमयी लता है, जिसे जिह्वाके नास पिकारा जाता है । जो 'श्रीकृष्ण-कृष्ण-कृष्ण-श्रीकृष्ण' इस प्रकार श्रीकृष्ण-नामका कीर्तन नहीं करती, वह रोगरूपिणी जीभ सौ टुकड़े होकर गिर जाय ।

२४७४—तुम्हारे बलपर मन वशमें नहीं होगा, भगवान्‌के बलपर विश्वास करो और चुपचाप उनकी याद करते रहो ।

२४७५—भगवान्‌की यादसे बढ़कर कोई पुण्य नहीं है और उनको भूल जानेसे बढ़कर कोई पाप नहीं है ।

२४७६—पापका फल जो करनेवालेको होता है वही प्रायः उनको प्रकट करनेवालेको होता है, इसलिये दूसरेके पापोंको प्रकट न करो ।

२४७७—जो पाप प्रकट हो जाते हैं वे बदनामी देकर नष्ट हो जाते हैं इसलिये हिम्मत करके अपने पापोंको प्रकट कर दो और बदनामीको सिर चढ़ाकर सुखी हो जाओ ।

२४७८—भजन होता है गरजसे । इसमें प्रारब्ध माननेवाला मूर्ख है ।

२४७९—भजन न करके जो विषयोंमें वैराग्य चाहता है वह बड़े धोकेमें है । भजन करो तो विषयोंमें वैराग्य आप ही होगा ।

२४८०—भगवान्‌के प्रेमीकी यह पहचान है कि वह भगवान्‌के लिये सदा व्याकुल रहता है ।

२४८१—विरह-तापसे जबतक हृदय नहीं जलने लगता तब तक भगवान्की मुख-माधुरीके दर्शन नहीं होते ।

२४८२—जैसे भूखा अन्नके लिये और प्यासा जलके लिये जलता रहता है, उससे भी अधिक ताप तुम्हारे हृदयमें भगवान्के लिये होना चाहिये ।

२४८३—सच्चा गुरु वही है जो भगवान्की प्राप्ति करवा दे । शिष्यको चाहिये कि वह गुरुकी आज्ञाका पालन करे, केवल गुरु कहनेमात्रसे काम नहीं चलता ।

२४८४—भगवान्को छोड़कर केवल दैवी गुणोंसे मोक्षकी आशा रखना बच्चोंकी-सी व्यर्थ चेष्टा है । सत्य आदि सद्गुणोंके उहरानेके लिये भगवद्विश्वासरूपी आधारकी अत्यन्त आवश्यकता है ।

२४८५—मनुष्यको चाहिये कि वह अपना काम देखे, दूसरोंके कामोंकी नुकताचीनी न करे ।

२४८६—जो दूसरोंके कामोंकी आलोचनामें ही लगे रहते हैं, वे अपना समय तो व्यर्थ खोते ही हैं; दोष देखनेकी उनकी आदत बन जाती है और जिनको दूसरोंमें दोष ही दीखते हैं उनके हृदयकी जलन कभी मिट ही नहीं सकती ।

२४८७—नम्रताके तीन लक्षण हैं—(१) कड़वी बातका मीठा जवाब देना, (२) क्रोधके अवसरपर भी चुप साधना और (३) किसीको दण्ड देना ही पड़े तो उस समय चित्तको कोमल रखना ।

२४८८—जो मनुष्य भगवान्से कृपा और स्नेहकी आशा रखता है उसे अपने आश्रितों और अपनेसे छोटोंपर सदा कृपा और स्नेह रखना चाहिये ।

२४८९—अच्छे र्गिसे भटके हुए लोगोंको प्रेमसे समझाकर राहपर लाओ । दुर्जनेके सुधारके लिये भी कोमल व्यवहार कठोर दण्डसे बढ़कर पानगी है ।

२४९०—याद रखो, मनुष्य-जीवनकी सच्ची सफलता भगवान्-के प्रेमकी प्राप्त करनेमें ही है ।

२४९१—भगवत्प्रेमकी प्राप्ति किसी भी साधनसे नहीं हो सकती । यह तभी मिलता है जब भगवान् स्वयं कृपा करके देते हैं ।

२४९२—भगवान्की कृपा सभीपर है, परन्तु उस कृपाके तब-तक दर्शन नहीं होते जबतक मनुष्य उसपर विश्वास नहीं करता और भगवत्कृपाके सामने लौकिक-पारलौकिक सारे भोगों और साधनों-को तुच्छ नहीं समझ लेता । परन्तु ऐसे विश्वासकी प्राप्ति और सबको तुच्छ समझनेकी स्थिति भी भगवत्कृपासे ही प्राप्त हो सकती है ।

२४९३—भगवत्कृपाकी, एकमात्र भगवत्कृपाकी ही बाट देखते हुए भगवान्का भजन करो ।

२४९४—मनके दोष, मनकी चञ्चलता, विषयोंमें आसक्ति आदि न मिटें तो निराश मत होओ, भजनके बलसे सब दोष अपने-आप दूर हो जायँगे ।

२४९५—जो मनुष्य भजन न करके दोषरहित होनेकी चेष्टा करता है, और दोषोंके रहते अपनेको भगवत्कृपाका अनधिकारी मानता है, वह तार्किकोंकी दृष्टिमें बुद्धिमान् होनेपर भी वस्तुतः भगवान्की अनन्त शक्तिमयी सहज कृपाकी अवहेलना करनेका अपराध ही करता है ।

२४९६—जहाँतक बन सके, बाहरके पापोंसे बिल्कुल बचकर भगवान्‌का भजन करो । जीवन बहुत थोड़ा है, विचारोंमें ही बिता दोगे तो भजनसे वञ्चित रह जाओगे ।

२४९७—भजन मन, वचन और तन तान्से ही करना चाहिये । भगवान्‌का चिन्तन मनका भजन है, नाम-गुण-गान वचन-का भजन है और भगवद्भावसे की हुई जीव-सेवा तनका भजन है ।

२४९८—भजन सर्वोत्तम वही है कि जिसमें कोई शर्त न हो, जो केवल भजनके लिये ही हो ।

२४९९—तन-मनसे भजन न बन पड़े तो केवल वचनसे ही भजन करना चाहिये । भजनमें स्वयं ऐसी शक्ति है कि जिसके प्रतापसे आगे चलकर अपने-आप ही सब कुछ भजनमय हो जाता है ।

२५००—और भजनमें सबसे अधिक उपयोगी और लाभदायक हैं—भगवान्‌के नामका जप और कीर्तन ! बस, जप और कीर्तनपर विश्वास करके नामकी शरण ले लो, नाम अपनी शक्तिसे अपने-आप ही तुम्हें अपना लेगा । और नाम-नामीमें अभेद है, इसलिये नामके द्वारा अपनाये जाकर नामी भगवान्‌के द्वारा तुम सहज ही अपनाये जाओगे । याद रखो, जिसको भगवान्‌ने अपना लिया, उसीका जन्म और जीवन सफल है, धन्य है !

संत और संतवाणीकी जय-जय !